UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186407

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 613.943 S61R Accession No. H 3524

Author सिंघी भँवरमल

Title राष्ट्र-योजना और परिवार-यो.

This book should be returned on or before the date last marked below.

राष्ट्र-योजना और परिवार-योजना

*

लेखक

भँवरमल सिंघी

*

प्रकाशक

परिवार-नियोजन समिति

३६१, अपर चितपुर रोड

कलकत्ता—७

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियाँ
वर्ष : १९५६
मूल्य : रु० १)

: सर्वाधिकार सुरक्षित :

मुद्रक :
के० सी० बसु
बिनानी प्रिण्टर्स प्राइवेट लि०
३८, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता–१

दो शब्द

सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करते हुए चारों तरफ अत्यधिक संतति-जन्म के कारण उत्पन्न हुई समस्या और घर-घर में उसके कारण व्याप्त चिन्ता को देख कर कार्यकर्ताओं का ध्यान पिछले १० वर्षों में परिवार-नियोजन की ओर विशेष आकृष्ट हुआ है। जैसा कि प्रत्येक सामाजिक सुधार के बारे में होता रहा है, शुरू-शुरू में इसका भी काफी विरोध हुआ। तथाकथित धर्म और नीति तो मानो इस विरोध को सहारा देने के लिए सदा खड़े ही रहते हैं। ६-७ वर्ष पहले जब शुरू-शुरू में मैंने इस विषय पर बोलना और लिखना तथा समाज-सेवा का सबसे जरूरी पहलू मान कर इस दिशा में प्रचार और आन्दोलन करना आरम्भ किया तो औरों की बात जाने दीजिए, कई समाज-सुधारक कहे जाने वाले व्यक्तियों ने भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इसका विरोध किया। कुछेक ने तो परिवार-नियोजन समितिके द्वारा प्रकाशित 'परिवार-नियोजन' पुस्तिका को कोकशास्त्र-जैसा बता कर विरोध को विशेष उभाड़ने की भी चेष्टा की; और भी जो कुछ हो सका, किया। परन्तु जन-जीवन की आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों की टक्कर में यह विरोध टिक नहीं पाया। और, चूंकि सरकार ने भी इन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्या के आंशिक समाधान के रूप में राष्ट्रीय विकास की प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसे ले लिया, इसलिए भी यह तथाकथित धर्म और नैतिकता का हो-हल्ला बन्द हो गया।

एक बात और भी हुई जिसकी वजह से यह विरोध बढ़ नहीं सका। इस पर संसार के बड़े से बड़े विचारकों का ध्यान गया और

सारी मानव-जाति की समस्या के समाधान के रूप में इसे देखा जाने लगा। इतिहास के जगत्प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर आर्नोल्ड टॉयनबी तक ने कहा––"युद्ध की समाप्ति की दिशा में सबसे बड़ी बाधा यह है कि हमारे संसार में जन-संख्या आश्चर्यजनक गति से बढ़ रही है।....शान्ति बनाये रखने में यदि हम सफल हो गये और भावी युद्ध की संभावनाओं को निर्मूल कर सके तो दूसरी समस्या जो हमारे सामने उपस्थित होगी, वह है संसार की जन-संख्या को सीमित रखना। यदि अणु-शस्त्रों द्वारा मानव का विध्वंस नहीं हुआ तो संसार को जन-संख्या संतति-निरोधक प्रसाधनों के उपरान्त भी इतनी बढ़ जायेगी कि लोग भूखे मरने लगेंगे। इससे बचने का एक ही उपाय है––हम अपनी आदतों और संतान-उत्पादन के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करें।"

टॉयनबी जैसे इतिहासवेत्ता की इस चेतावनी के पीछे मानव-जाति के वर्तमान युग की परिस्थितियों और समस्याओं का कितना गहरा ज्ञान है, यह किसी को भी बतलाने की आवश्यकता नहीं। परिस्थितियां स्वयं इस चेतावनी का दिशा-संकेत कर रही हैं। बर्ट्रेण्ड रसेल आदि दूसरे महान विचारकों का भी यही मत है। इस प्रकार परिवार-नियोजन आज अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का विषय बन गया है। समस्त देशों की सरकारें इस प्रश्न पर जनता के स्वास्थ्य और सामाजिक-आर्थिक उन्नयन की दृष्टि से विचार कर रही हैं। रूस और चीन की साम्यवादी सरकारें भी, जो थोड़े दिनों पहले तक परिवार नियोजन को साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों का आन्दोलन कह कर खिल्ली उड़ाया करती थीं, आज इस विषय पर ध्यान देने के लिए मजबूर हो गई हैं।

भारत सरकार ने परिवार-नियोजन को राष्ट्रीय विकास योजना में स्थान देकर संसार के अन्यान्य देशों के सामने एक नया आदर्श उपस्थित किया है। यद्यपि अभी तक बहुत ठोस कार्य नहीं हो पाया

है परन्तु प्रधान मंत्री श्री नेहरू के नेतृत्व में इस दिशा में भी एक नई आबहवा पैदा हुई है। श्री नेहरू ने कहा है कि "यह सोच कर भी डर मालूम होता है कि यदि संसार की जन-संख्या निरन्तर बढ़ती रही तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, प्रत्येक परिस्थिति पर उसका क्या असर पड़ेगा ?" स्वदेश के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि "यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हमारा देश प्रगति करे और जीवन-यापन का स्तर ऊँचा हो। इस स्तर को ऊँचा करने के मार्ग में दूसरी अनेक बाधाओं में एक जन-संख्या में वृद्धि भी है जिसके कारण जीवन-यापन का स्तर नीचा रहता है। अतः राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक किसी भी दृष्टि से देखें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमें परिवार-नियोजन के काम को हाथ में लेना चाहिये और इस काम को उत्साह एवं बुद्धिमत्ता के साथ पूरा करना चाहिये। ....लोगों को शिक्षित करना है और उनको अपने विचारों का बनाना है। परिवार-नियोजन की बात ऐसी भाषा में बहुसंख्यक लोगों तक पहुंचानी है जो उनकी समझ में आती हो।"

इस पुस्तक में जिन लेखों का संकलन किया गया है, वे इसी दृष्टि से लिखे गये हैं। विगत ६-७ वर्षों में भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखे होने के कारण इनमें पुनरावृत्ति अनेक स्थलों पर मिलेगी; परन्तु जो बात आवश्यक है, उसे दुबारा-तिबारा कहने में भी आपत्ति नहीं है, यह मान कर मैंने लेखों में काटछांट नहीं की है। जिस समय ये लेख लिखे गये थे, उस समय सरकारी नीति और कार्य में जो शिथिलता थी, वह आज नहीं है। इसलिए कतिपय लेखों में सरकार की जो आलोचना की गई है, वह अब बहुत मौजू नहीं मालूम होगी, लेकिन जो लेख जिस वक्त लिखे गये थे, उस वक्त की परिस्थिति को ध्यान में रख कर ही उनको पढ़ा जाना चाहिये।

यदि इस पुस्तक के द्वारा सन्तानोत्पत्ति के प्रति अपना दृष्टिकोण

बदलने की प्रेरणा पाठकों को मिलेगी और वे अधिक सन्तान की समस्या के समाधान में सहायता पहुँचाने की दिशा में सक्रिय दिलचस्पी लेकर काम करेंगे तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूँगा और इन लेखों का संकलन प्रकाशित करने के लिए मित्रों का आग्रह सार्थक समझूंगा।

भारत सरकार के राष्ट्रीय योजना आयोग के सदस्य डा० जे० सी० घोष ने इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की जो कृपा की है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन को प्रथम योजना से जो कई गुणा अधिक महत्व मिला है और भारत सरकार इस दिशा में अधिक दृढ़ता के साथ कार्यशील हुई है, इसका बहुत कुछ श्रेय डा० घोष को है।

इस संकलन के सम्बन्ध में इतनी बात और कह दूँ कि पाठक इसमें एक विशेषज्ञ की दृष्टि नहीं, किन्तु एक सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा किया हुआ परिस्थितियों का विश्लेषण और सामाजिक एवं कौटुम्बिक पीड़ा की टीस भर पाएँगे और विशेषज्ञों और विद्वानों के विचारों के आधार पर गृहीत कुछ निष्कर्ष। इससे अधिक जानने-समझने के लिये इस विषय के विशेषज्ञों के ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन करना होगा।

परिवार-नियोजन समिति
३६१, अपर चितपुर रोड
कलकत्ता—७

भँवरमल सिंघी

Foreword

Literature on Family Planning in Hindi is conspicuous by its absence and so Shri Singhi's work fills up a gap in this respect. Shri Singhi has brought within the scope of one book the logic behind family planning, its techniques, consequences of population growth and the role of Government and people in making a success of family planning programme.

It is a well-known fact that the population of India is very large relative to its resources, being second largest of the national populations of the world. The seriousness of the problem is clearly brought home when it is realised that annual addition to population call for an additional production of 3 million tons of food grains every year and accretion to total wealth of a similar order for maintaining population at existing levels of living.

The country has already addressed itself to the task of population control. Family Planning was given an important place in the First 5-year plan and has been accorded a high priority in the Second. In a country where voluntary organisations are not sufficiently developed, Government has, of necessity, to take a lead. Nevertheless, a Government's effort cannot succeed unless it is adequately supplemented by people's enthusiasm. It is in this role that the main importance of the book lies. It sets forth dispassionately the salient features of our population problem and methods of solving it together with a critique of the measures taken so far. I trust that Shri Singhi's book will bring within the reach of Hindi reading people information about a subject which was considered a taboo until recently but which is of the greatest importance for the development of the country on sound lines.

Planning Commission,
Government of India,
New Delhi.

J. C. GHOSH,

अनुक्रमणिका

दो शब्द (लेखक) क

प्राक्कथन (डॉ० जे० सी० घोष) ङ

सन्तति-निग्रह क्यों ? .. १

परिवार-नियोजन क्या, क्यों और कैसे ? .. ११

सन्तति-वृद्धि : एक गम्भीर समस्या .. १६

सन्तति-निग्रह : एक जाँच तथा विश्लेषण .. २२

जन्म-निरोध अप्राकृतिक है ? .. ३२

मार्गरेट सेंगर के साथ चालीस मिनट .. ३८

सन्तति-नियमन और सरकार .. ४५

जन्म-नियन्त्रण और जनमत . ५०

जन्म-नियन्त्रण और नेहरू सरकार ५८

राष्ट्रीय योजनाएँ और परिवार-नियोजन ६४

भारत में परिवार-नियोजन आन्दोलन ७५

बिनोबाजी का 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' ! ८२

८, ९, १० ८७

सन्तति-निग्रह क्यों ?

हमारे देश में पिछले कुछ दशाब्दों में जनसंख्या जिस रफ्तार से बढ़ी है और आज भी बढ़ रही है, उसको देखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि सन्तानोत्पत्ति के विषय में हरएक स्त्री और पुरुष सावधानी बरते। कहना न होगा कि जितनी तेज रफ्तार से जनसंख्या बढ़ी और बढ़ रही है, खाद्योत्पादन उसी रफ्तार से नहीं बढ़ा और न बढ़ने की संभावना ही है। इसी का परिणाम है कि देश में चारों ओर ग़रीबी और भुखमरी बढ़ती जा रही है। वास्तव में यह स्थिति ही हमारी आज की अधिकांश सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के मूल में है; और देश को इस स्थिति एवं तज्जनित समस्याओं से अगर त्राण पाना है, तो अनियन्त्रित गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकना देशवासियों का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

सन्तोष की बात है कि देश के हित-चिन्तक विद्वानों और विचारशील जनता का बहुत बड़ा भाग इस प्रश्न के प्रति जागरूक होता जा रहा है। अब इस विषय में तो शायद ही कहीं दो मत हों कि अबाध गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोके बिना हम किसी भी उपाय से और किसी भी योजना से देश की बहुमुखी समस्याओं को हल नहीं कर सकते। आज कोई यह कहने का साहस नहीं करता कि जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना ही खाद्योत्पादन में वृद्धि एवं आर्थिक उन्नति द्वारा हम देश में उत्पन्न हुई भुखमरी की समस्या को हल कर सकते हैं। ऐसी दलील के जवाब में एक बार इस समस्या पर विचार करने वाले विद्वानों में अत्यन्त ख्याति-प्राप्त हैवलॉक एलिस ने कहा था—
"The economic factor can never in itself suffice for the

fine living or even as a cure-all of all social and racial diseases."

हकीक़त में आज केवल भुखमरी की ही समस्या नहीं है। सारा-का-सारा समाज आज अस्वस्थ हो रहा है। अधिक और अनियन्त्रित सन्तानोत्पत्ति के कारण व्यक्ति और समाज का जीवन क्षुब्ध और दुःखी होकर राष्ट्रीय ह्रास और पतन का कारण बन रहा है। जिन माता-पिताओं के सामने खाने-पहनने की कमी नहीं है, उनके लिए भी अधिक बच्चों की समस्या कम कठिन नहीं है। वे भी अपने बच्चों के प्रति पूरी ज़िम्मेदारी नहीं निभा पाते ; बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का जैसा प्रबन्ध होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाता। और, बार-बार गर्भ धारण करने और बच्चा पैदा होने से स्त्री के स्वास्थ्य पर जो घातक प्रभाव पड़ता है, वह भी किसी विचार-शील व्यक्ति से छिपा नहीं है। वास्तव में देखा जाय तो सम्पन्न से सम्पन्न घर में भी अनियन्त्रित सन्तति-प्रजनन से स्त्री का जीवन ही ग़ारत हो जाता है। घर की दासी, पति की भोग्या और उसकी सन्तानों की भारवाहिका माँ होकर जीने के अतिरिक्त स्त्री के जीवन में और कुछ नहीं रह जाता। इसमें कोई शक नहीं कि सन्तति-धारण और प्रजनन की ज़िम्मेदारी प्रकृति से नारी को ही मिली है ; परन्तु यही तो उसकी एकमात्र जिम्मेदारी नहीं है। जैसे पुरुष के जीवन का उद्देश्य और जिम्मेदारी पिता होने में ही समाप्त नहीं हो जाती, वैसे ही नारी के जीवन का उद्देश्य भी मात्र गर्भ-धारण और प्रजनन ही नहीं है। आज तक नारी के जीवन की इस प्रकार की व्याख्या करके समाज ने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। इसका असर केवल स्त्री पर ही नहीं पड़ा है, बल्कि बच्चों पर और समूचे समाज पर भी पड़ा है। आश्चर्य तो यह है कि सत्य, समता और न्याय का आधार रखने का दम भरने वाले धर्म और नीति ने भी इसी मिथ्या विश्वास का समर्थन किया। किन्तु नारी भोग और प्रजनन

के लिए ही होती है, इस विश्वास की जड़ें अब काफी हिल चुकी हैं और नारियाँ आज इस मान्यता के विरुद्ध विद्रोह कर रही हैं। इस विद्रोह में गर्भ-निरोध के विज्ञान-सम्मत विचार ने पुरानी, झूठी और भ्रामक नैतिकता के प्रहार से नारी की रक्षा की है। अतएव जन्म-नियन्त्रण का सवाल केवल जनसंख्या और खाद्योत्पादन की सापेक्षिकता के दृष्टिकोण से ही विचारणीय नहीं है; उसके और भी कई पहलू हैं। इसके सारे दृष्टिकोणों को समेट कर बरट्रेण्ड रसेल ने इस प्रकार रखा है:

"This is in itself a vast problem which must be considered from many points of view. There is the question of health of mothers, the question of health of children, the question of psychological effects of large and small families respectively upon the character of children. These are what may be called the hygienic aspects of the problem. Then there are the economic aspects, both personal and public: the question of wealth per head of a family or a community in relation to the size of the family or the birth-rate of the community. Closely connected with this is bearing of the population question upon international politics and the possibility of the world peace. And finally there is eugenic question as to the improvement or deterioration of the stock through the different birth and death rates of the different sections of the community."

इस प्रकार अधिक सन्तानोत्पत्ति व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज और जाति की एक से अधिक समस्याओं का कारण है। इस बात को मद्देनज़र रख कर ही हमें जन्म-नियन्त्रण की आवश्यकता के विषय

में विचार करना चाहिए। जो लोग प्राचीन धार्मिक परम्परा और उसकी मान्यताओं में विश्वास रखते हैं, उनका कहना है—हम भी जनसंख्या की वृद्धि को तो हर प्रकार से घातक समझते हैं और इस बात से भी सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति पर नियन्त्रण किया जाय; लेकिन उसका उपाय ब्रह्मचर्य होना चाहिए, जिससे न केवल हमारी भौतिक समस्या का ही समाधान होगा, बल्कि जीवन में धर्म की भी वृद्धि होगी। यह हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों की दृष्टि है। इसके अनुसार यह माना गया है कि काम-शक्ति ही मनुष्य-जीवन की मूल शक्ति है और उसी में सारे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का उत्स है। इस विचार के लोग कहते हैं कि अगर सिर्फ सन्तानोत्पत्ति पर ही नियन्त्रण रखा जायगा और यौन-समागम की छूट रहेगी—बल्कि सन्तानोत्पत्ति की सम्भावना का भय न रहने के कारण समागम में वृद्धि होगी—तो मनुष्य की शक्ति का विनाश रुकना तो दूर की बात, वह और बढ़ जायगा। भोग की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति अधिक हो जायगी, जिससे समाज का हित होने के बदले नुकसान ही ज्यादा होगा।

इस बारे में ईश्वर ने क्या कहा है, क्या कहता है और क्या कहेगा, यह तो हम नहीं जानते; परन्तु पिछले सौ वर्षों में मनुष्य के शरीर और मन की क्रियाओं के बारे में किए गए वैज्ञानिक अनुसन्धानों से जिन परिणामों पर पहुँचा गया है, उनसे तो इस धारणा का समर्थन नहीं होता। प्रत्यक्ष अनुभव और अन्वेषण के आधार पर वैज्ञानिकों का यह मत है कि काम-प्रवृत्ति मनुष्य में जन्म-जात और नैसर्गिक है। काम-प्रवृत्ति के बिना मनुष्य जैसे है ही नहीं। इस प्रवृत्ति को बिल्कुल निर्मूल करना असम्भव है। साथ ही यह धारणा भी ग़लत साबित हो चुकी है कि काम-प्रवृत्ति के दमन में कोई बहुत बड़ी साधना निहित है। काम-प्रवृत्ति का वेग अदम्य होता है तथा उसका पूर्णतया दमन करना असम्भव चाहे न भी हो, परन्तु

अस्वाभाविक और अवांछनीय ज़रूर है। अवसर देखा जाता है कि जिन लोगों ने अपनी इच्छा से या अन्य कारणों से काम-प्रवृत्ति का दमन किया है, उनके जीवन में कई अस्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पैदा हो गई हैं। शारीरिक दृष्टि से काम-वृत्ति का दमन कर भी लिया जाय; पर अन्य प्रकार से मानसिक व्यभिचार और जीवन में एक आन्तरिक संघर्ष हमेशा होता रहता है, जिस पर विजय पाना उतना सरल नहीं होता, जितना दैहिक काम-प्रवृत्ति पर नियन्त्रण कर लेना। और, इस दमन एवं उसके कारण उत्पन्न हुए संघर्ष से व्यक्ति के जीवन में ऐसी अस्वाभाविक प्रवृत्तियाँ जन्म ले लेती हैं, जो समाज के प्राकृतिक स्वास्थ्य में बाधक होती हैं। जर्मनी के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ऑसवाल्ड स्वार्ज ने कहा है:

"A life without sexuality is from any point of view a defective life, however great the achievements of such a person may be in any field of human activities. Such achievements are attained inspite of but certainly not through celibacy at least within the sphere of common life, which we ordinary people lead. And this is still more true of women than of men. By remaining celibate a man gives up some of the fullness of life but a woman sacrifices an essential part of herself. If we refrain from specious explanations and confine ourselves to the facts that can be ascertained, we must say that just the reverse process takes place, not because sex is denied its moral outlet, does it turn into spirit—as an escape in disguise, as it were—but because a man is wholly filled with religious faith and fervour, the sexual urge vanishes."

कहने का तात्पर्य यह है कि यौन-जीवन का सर्वथा निषेध या

दमन असम्भव, अस्वाभाविक और अवांछनीय होता है, एवं वैसा करने से अधिक सन्तानोत्पत्ति की समस्या के हल में कुछ मदद हो भी, पर दूसरी कई जटिल समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। हाँ, इससे कोई इन्कार नहीं करता कि यौन-जीवन में संयम की आवश्यकता होती है; परन्तु यह संयम पूर्णतया निषेधात्मक नहीं हो सकता, विधेयात्मक संयम ही सम्भव और समीचीन है। वास्तव में संयम और असंयम का प्रश्न ज्ञान एवं अज्ञान से सम्बन्धित है। पर थोड़ी देर के लिए मान ही लिया जाय कि काफी लोग आंशिक ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ हो जायें, तो भी उससे अधिक सन्तान की समस्या का हल नहीं होता। एक-दो बार के ही समागम से गर्भ-धारण हो जा सकता है। इसलिए सन्तान की समस्या को हल करने के निश्चित उपाय दो ही हो सकते हैं: या तो पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह—अर्थात् ब्रह्मचर्य, या जन्म-नियन्त्रण की विधि का पालन। जो स्त्री-पुरुष धार्मिक या आध्यात्मिक विश्वास के साथ सम्भावित नुकसानों की पर्वाह न करके ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा इस समस्या को हल करना चाहते हैं, उनका न तो कोई विरोध है, न उन पर वैसा करने का दबाव ही; पर साधारण स्त्री-पुरुषों के लिए जीवन का नियम इस आधार पर नहीं बन सकता। उनके लिए आत्म-संयम एक रेलगाड़ी में ब्रेक की तरह ही होना चाहिए। इससे अधिक कुछ नहीं। अगर रेलगाड़ी गलत रास्ते पर जा रही हो, तो ब्रेक काम में लाना ठीक है। पर सही दिशा में, सही रास्ते पर और उचित रफ्तार से जाती हुई रेल में ब्रेक लगाने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि उसमें ब्रेक लगाने से तो यात्रा ही रुक जायगी। इसी प्रकार मनुष्य का काम-जीवन समझना चाहिए। यह बिल्कुल ठीक है कि काम-शक्ति अति भोग के द्वारा नष्ट करने से हानि ही होती है। जीवन का सारा बल और तेज जिस शक्ति में से प्रस्फुटित होता है और जीवन की समस्त उदात्त और उच्च उपलब्धियों की साधना का मूलस्रोत जिस शक्ति में है, उसके विकास की

आवश्यकता है, न कि उसको बाँध कर सड़ाने और सीमित करने की। तथाकथित संयम की अति भी भोग की अति से कम नुकसानदेह नहीं। आपत्ति अति पर होनी चाहिए, सहज और स्वाभाविक जीवन की गति पर नहीं। यही कारण है कि कामेच्छा और काम-प्रवृत्ति का पूर्ण निग्रह जो ब्रह्मचर्य में आवश्यक होता है, नितान्त अस्वाभाविक और अव्यावहारिक है। यह बात कहने में आज के हमारे परम्परावलम्बी समाज में कितना खतरा है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ; परन्तु लोकापवाद अथवा लोक-निन्दा या पाप और नास्तिकता एवं अनैतिकता का लेबिल लगने के भय से जीवन के तथ्यों की अवज्ञा नहीं की जा सकती। जिन चीज़ों को हम रोज़-ब-रोज़ अपने और दूसरों के जीवन में देखते हैं, उनको इसलिए प्रकट न करें कि हमारे पूर्वजों ने उनको देखा नहीं अथवा प्रकट नहीं किया था, तो फिर जीवन का मतलब ही क्या है? सैकड़ों-हज़ारों वर्षों पहले समाज में जो वहम, रूढ़िवाद और अन्ध-विश्वास थे, वे विज्ञान की प्रगति से दूर हो गए हैं और होते जा रहे हैं। ऐसी हालत में आँखें बन्द किए हुए जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों के बारे में नये विचारों और मूल्यों के ज्ञान को ग्रहण करने और उसके अनुरूप जीवन-व्यवहार को अपनाने से मुँह मोड़ना कायरता और जीवन-विरोधिता है। अधिक बच्चों की जो समस्या हमारे सामने है, उसे ब्रह्मचर्य के मार्ग से रोकने की कोशिश व्यापक रूप में अयुक्त और असम्भव है। अपवाद स्वरूप कुछ व्यक्ति इसमें सफलता पा भी लें; पर साधारण इच्छा, आकांक्षा और प्रवृत्तियों के करोड़ों लोगों का यह जीवन-मार्ग नहीं हो सकता। उनके लिए सन्तति-नियन्त्रण की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग ही सम्मत है और समीचीन भी।

यह भी ठीक है कि वैज्ञानिक उपचारों से जन्म-निरोध हर अवस्था में निश्चित लाभ की ही वस्तु नहीं है। जन्म-निरोध के तरीकों का व्यवहार भी अगर बुद्धि और विवेक पूर्वक दूसरी सब बातों का विचार

किए बिना होगा, तो उससे हानि होना सम्भव है। जन्म-निरोध अपने-आप में उद्देश्य नहीं है, वह स्थितिविशेष की दृष्टि से व्यक्ति के जीवन में सहायक हो सकता है। उद्देश्य तो जीवन का स्वस्थ विकास है। जन्म-निग्रह के समर्थक भी कभी यह नहीं कहते कि आँखें बन्द करके हर हालत में इसका प्रयोग किया जाय। जहाँ सन्तानोत्पत्ति व्यक्ति और समाज के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने का कारण हो, वहीं इस उपचार का औचित्य होता है। यह धारणा भी निराधार है कि व्यापक रूप में सन्तति-निग्रह के कारण देश या समाज के जातीय जीवन का ह्रास और पतन होता है। इस धारणा का खण्डन हालैण्ड के उदाहरण से भली भाँति होता है। वहाँ काफी अर्से से गर्भ-निरोध के उपचारों का प्रचलन है और काफी संख्या में वहाँ की जनता इनका प्रयोग करती है। परन्तु इसका असर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य और बल पर अच्छा ही पड़ा है। पहले की अपेक्षा वहाँ लोग क़द और बल में बढ़े हैं। कहा गया है कि वहाँ के औसत आदमी की ऊँचाई भी ४ इंच बढ़ी है।

जन्म-नियन्त्रण का जो विरोध किया जाता है, उसका विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् सी० ई० एम० जोड ने कहा है—"जन्म-नियन्त्रण के विरुद्ध दी जाने वाली उन दलीलों का जवाब देना हमारा काम नहीं है, जिनका कोई बुद्धि-संगत आधार नहीं है। हमें केवल इतना ही देखना है कि उन दलीलों का जीवन पर कितना असर हुआ है या भविष्य में हो सकता है। मेरी राय में जन्म-नियन्त्रण का बहुत सारा विरोध तो किसी भी नई वस्तु-मात्र के प्रति होने वाला विरोध ही है। किसी भी नई वस्तु, नई पद्धति के बारे में पहले-पहल मनुष्य की स्वाभाविक प्रतिक्रिया विरोध की ही होती है। उस विरोध का कारण उस वस्तु या पद्धति का अपना कोई दोष या दुर्गुण नहीं होता, सिर्फ उसका नयापन ही विरोध का कारण होता है; क्योंकि वही बात सौ-पचास वर्षों के बाद स्वीकृत होकर परम्परा का अंग बन

जाती है। मनुष्य के विचार और जीवन-व्यवहार का जो तरीका अब तक रहा है, नई बात उससे अच्छी है—यह साधारणतः आदमी के स्वाभिमान को क्षति पहुँचाती है और कुछ वर्ष बीतने पर ही वह उसे अंगीकार कर सकता है। ऐसी ही स्थिति गर्भ-निरोध के बारे में किए जाने वाले विरोध की है। गर्भ-निरोध की बात नई है। वह लोगों को परम्परागत धारणाओं और आदतों में एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन करने वाली लगती है। जैसे-जैसे गर्भ-नियन्त्रण के विचार फैलते जायँगे और अधिकाधिक लोग इसे अपना लेंगे, वैसे-वैसे यह विरोध कम होता जायगा। ऐसे मामलों में विरोध के तीन रूप होते हैं। पहला होता है : यह बिल्कुल वाहियात और मूर्खतापूर्ण बात है। दूसरा रूप होता है : यह धर्म और शास्त्र के विरुद्ध है। और तीसरा तरीका है : यह तो हमारे यहाँ पहले से ही मौजूद था।"

वर्तमान काल में गर्भ-निरोध के साधनों का व्यवहार लगभग सभी सभ्य देशों की जनता द्वारा अपना लिया गया है और इसे बन्द नहीं किया जा सकता। कई अन्वेषणशील विद्वानों के मत के आधार पर कहा जा सकता है कि यह धारणा बद्धमूल होती जा रही है कि व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज और देश का हित जन्म-नियन्त्रण के साधनों के विवेकपूर्ण व्यवहार से जुड़ा हुआ है—चाहे इस बारे में हमारा दृष्टिकोण यह हो कि उसके द्वारा प्रकृति को मदद दे रहे हैं, चाहे यह कि प्रकृति का सुधार कर रहे हैं। यह धारणा संसार की तमाम सभ्य जातियों में फैलती जा रही है और उसके अनुसार जीवन के तौर-तरीक़ों में परिवर्त्तन हो रहा है।

आज भारतीय समाज में यौन-जीवन के सम्बन्ध में ईश्वर, धर्म और नीति के नाम पर जो वहम और भ्रामक धारणाएँ एवं अव्यवस्था फैली हुई है, उसे यों ही निरपेक्ष भाव से देखते रहने से तो देश का सारा जीवन अस्वस्थ हो जायगा और जीवन की आशा ही मिट जायगी। हमारी सरकार को इस दिशा में उपेक्षा का भाव नहीं

रखना चाहिए। रूस में क्रान्ति के बाद तुरन्त ही सामाजिक नवनिर्माण का कार्यक्रम हाथ में लिया गया और यौन जीवन सम्बन्धी सामाजिक धारणाओं, प्रवृत्तियों और पद्धतियों में नाना परिवर्त्तन करके नवजीवन प्रदान किया गया। चीन में भी जब हाल ही में क्रान्ति हुई, तो वहाँ की नई सरकार को देश की बढ़ती हुई जन-संख्या और उसके कारण उत्पन्न सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में जुट जाना पड़ा है। हमारी वर्त्तमान सरकार को भी इस विषय में अधिक सजग और सक्रिय होना होगा।

'नया समाज'
दिसम्बर, १९५०

परिवार-नियोजन क्या, क्यों और कैसे ?

आज किसी को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योजनापूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है। विश्व के सारे देशों में आज समाजिक और राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की योजनाओं का बोलबाला है। इन सबका उद्देश्य मनुष्य-जीवन के दुख-दैन्य को दूर करना और सुख-समृद्धि को बढ़ाना है। विज्ञान की वर्तमान प्रगति इन योजनाओं में अत्यन्त सहायक हो रही है। जिन बातों की हमारे पूर्वज कभी कल्पना तक नहीं कर पाते थे, वे आज हमारी आँखों के सामने हो रही हैं। विज्ञान की मदद से वास्तव में कोई भी चीज आज असम्भव नहीं मालूम पड़ती। इस वैज्ञानिक प्रगति ने मानवीय विचार-जगत में एक जबरदस्त क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। जीवन के विविध प्रश्नों के सम्बन्ध में हमारी धारणाएँ प्रबल वेग से बदलती जा रही हैं और कल तक सत्य मानी जानेवाली बहुत सी बातें आज असत्य प्रमाणित हो रही हैं।

विज्ञान द्वारा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और हृदय की क्रिया-प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में जिन बातों का पता चला है, उनसे उसके जीवन-व्यवहार और सामाजिक आचार-व्यवहार के क्षेत्र में नई उद्भावनाएं उत्पन्न हुई हैं और उनके कारण नीति-अनीति, धर्म-अधर्म सम्बन्धी बहुत-सी मान्यताएं निर्मूल और अमान्य हो गयी हैं। स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध और प्रजनन सम्बन्धी बातों पर भी कितना नया प्रकाश आज प्राप्त है! अगर आज कोई यह कहे कि सन्तान का जन्म दैवेच्छा पर अवलम्बित है तथा जो दैवेच्छा है, उसे कोई बदल नहीं सकता

तो उसके अज्ञान पर हंसी आये बिना नहीं रहेगी। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सन्तान का जन्म माता-पिता के रज-वीर्य का संयोग होने का परिणाम है और अगर यह संयोग न होने दिया जाय तो मैथुन होने पर भी गर्भाधान न होगा। इस जानकारी ने और रज एवं वीर्य को न मिलने देने के वैज्ञानिक साधनों ने आज यह भलीभांति सम्भव कर दिया है कि दम्पत्ति सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी आवश्यकता के अनुसार योजना बना कर रह सकते हैं। इसी को परिवार-नियोजन कहते हैं।

विवाह कुटुम्ब और समाज के विकास और विस्तार का मूलाधार है और विवाह के मूल में स्त्री-पुरुष का काम-समागम है। इस काम-समागम की बात को छोड़कर विवाह की बात सोचना या कहना एक अपवाद मात्र होगा। यदि यह भी कहा जाय कि पेट की भूख की तरह ही यौन भूख भी होती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह ऐसा सत्य है जिसको कितने भी धर्म और नीतिके घटाटोप से ढका नहीं जा सकता। किसी भी स्वस्थ और सामान्य मनःस्थिति वाले पुरुष या स्त्री के लिए हमेशा के वास्ते यौन सम्बन्ध की प्राकृतिक भूख को इन्कार करके चलना संभव नहीं है। लेकिन यौन सम्बन्ध के फलस्वरूप सन्तान-जन्म का जो प्रश्न लगा है, उसका सम्बन्ध सिर्फ स्त्री और पुरुष के वैयक्तिक जीवन से ही नहीं है, उसका सामाजिक और राष्ट्रीय पहलू भी बहुत जबरदस्त है। सन्तान के जन्म पर अगर रोकथाम न हुई, तो, जैसा आज हो रहा है, जितना खाद्यान्न उत्पन्न हो सकता है, उससे ज्यादा खानेवालों की संख्या हो जायगी। यह मानी हुई बात है कि जो पैदा कर सकते हैं, उनकी अपेक्षा खानेवालों की संख्या हमेशा अधिक रहेगी। पर पैदावार और आबादी का अनुपात रहना आवश्यक है। इसे या तो मनुष्य योजनापूर्वक सन्तानोत्पादन पर नियन्त्रण रख कर कायम करे या फिर प्रकृति अकाल, महामारी तथा अन्य प्रकार से

कायम कर देगी। इन कष्टप्रद तरीकों की अपेक्षा यदि मानव-समाज बुद्धि से काम ले और योजनापूर्वक चले तो इस संकट से अनायास बचा जा सकता है। परिवार-नियोजन की बात कहने वाले लोगों का यही मन्तव्य है।

विज्ञान की मदद से आज इस प्रकार के साधन उपलब्ध हैं जिनके जरिये सन्तान-जन्म के सम्बन्ध में योजनापूर्वक विवाहित जीवन यापन करना सम्भव है। रबड़ की ऐसी थैलियाँ और आवरण प्राप्य हैं जिनको पुरुष की जननेन्द्रिय पर चढ़ा कर या स्त्री के गर्भाशय के मुँह पर चढ़ा कर मैथुन करने से वीर्य का रज के साथ संयोग नही होता और गर्भ-धारण नहीं हो पाता। कई प्रकार की रासायनिक औषधियां भी मिलती हैं जिनके प्रयोग से वीर्य के प्रजननकारी कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और गर्भाधान नहीं हो पाता। तदतिरिक्त स्थायी रूप से प्रजनन कार्य को बन्द करने की दृष्टि से ऑपरेशन भी होता है। स्त्री का ऑपरेशन अधिक कठिन, अधिक खर्चीला और अधिक समय लगने वाला है परन्तु पुरुष का ऑपरेशन बहुत आसान, बहुत कम खर्चीला, और बहुत कम दिन लगने वाला है। ऑपरेशन के बाद पुरुष को एक दिन से अधिक बिस्तर पर नहीं पड़े रहना पड़ता। आजकल इस प्रकार के ऑपरेशन होने लगे हैं और उससे पुरुष को किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। हरएक दम्पत्ति अपनी स्थिति के अनुसार इनमें से किसी भी तरीके को काम में ला सकते हैं।

आज परिवार-नियोजन एक विश्व-आन्दोलन है। सभी देशों में समाज-सेवकों, चिकित्सकों और अर्थशास्त्रियों का ध्यान इस विषय पर लगा हुआ है। किसी देश में इसका प्रचार और व्यवहार बहुत बढ़ा हुआ है तो कहीं पर इसका अभी प्रारम्भ ही हुआ है। परन्तु फैला हुआ है यह दुनिया के अधिकांश देशों में। इसका उद्देश्य हमेशा ही यह नहीं है कि सन्तान-जन्म को रोका जाय। जहां स्वास्थ्य तथा अन्य कारणों से इस बात की जरूरत समझी जाती है कि बच्चा होना

चाहिए, वहां जांच करके उचित डाक्टरी सलाह द्वारा वैसी व्यवस्था भी की जाती है। वास्तव में सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य के कारणों से जरूरत मालूम होनेपर संतति-वृद्धि को रोकना ही इस आन्दोलन का लक्ष्य है। संतति-निरोध की बात बिलकुल नई तो नहीं है, पर इसके वर्तमान वैज्ञानिक साधन अवश्य नये हैं। आज इसका जो विरोध कहीं कहीं होता है, उसमें वही मनोवृत्ति छिपी हुई है, जो हर नई बात का विरोध करती है। आज तक विज्ञान के द्वारा समाज में जिन-जिन नई बातों का प्रचलन हुआ, उनका इसी प्रकार बराबर विरोध होता आया है। लेकिन आवश्यकता स्वयं ही इस विरोध को खत्म कर देती है और वह जीवन का नियम बन जाता है।

हिन्दुस्तान में परिवार-नियोजन का आन्दोलन पिछले दस वर्षों में काफी आगे बढ़ा है। और कई बड़े-बड़े शहरों में म्युनिसपैलिटियों तथा सामाजिक सेवा-संस्थाओं की ओर से परिवार-नियोजन की शिक्षा देने तथा प्रयोग बताने के लिए केन्द्र भी खुल गये हैं। सरकार का ध्यान इस विषय की ओर जा रहा है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि मध्यम श्रेणी के लोगों में भी इसका पूरा-पूरा प्रचार हो गया है। अभी इस दिशा में बहुत कार्य करना है।

हमारे यहां धर्म और नैतिकता की रूढ़ भावनायें बहुत जबर्दस्त हैं जिनकी वजह से तरह-तरह के लांछन इस आन्दोलन पर लगाये जाते हैं। संयम और ब्रह्मचर्य का नाम लेकर इसका विरोध करने की कोशिश की जाती है, पर जो लोग वैज्ञानिक तरीकों से जन्म-निरोध की बात कहते हैं, वे भी तो कभी यह नहीं कहते कि संयम और ब्रह्मचर्य की बात ही न की जाय। जो लोग इन्द्रिय-निग्रह के द्वारा इस समस्या का समाधान कर सकते हैं, वे भले ही वैसा करें। पर जो लोग संयम और ब्रह्मचर्य का उपदेश तो सुनते और देते रहते हैं परन्तु काम-सेवन की आवश्यकता से ऊपर नहीं उठ पाते और जिनके लगातार बच्चे होते रहते हैं जिनकी कि वे उचित परवरिश अपनी

आर्थिक स्थिति के कारण नहीं कर सकते, वे अगर इन साधनों का उपयोग करने से विमुख होते हैं, तो अपने-आप के, अपनी संतान के, अपने कुटुम्ब के और अपने राष्ट्र के शत्रु हैं। जो लोग आज अज्ञानवश परिवार-नियोजन पर ध्यान नहीं देते, उनको भी अपने विचारों को बदलना पड़ेगा। मंद दृष्टि वालों को चश्मे का वैज्ञानिक साधन अपनाने में जिस तरह किंचित भी आपत्ति नहीं रही, उसी तरह संतति-नियमन के वैज्ञानिक साधनों का व्यवहार करने में भी कोई विरोध रहने वाला नहीं है।

'नया समाज'
जनवरी, १९५३

संतति-वृद्धि : एक गम्भीर समस्या

हाल ही में सन् १९५१ की जनगणना की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। जनगणना कमिश्नर श्री आर० ए० गोपालस्वामी ने गत ६० वर्षों की जनगणना के आंकड़ों की तुलना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि अगर अगले तीस वर्षों में लोगों को भोजन उपलब्ध होता रहा या कम से कम यही स्थिति कायम रही, जो पिछले तीस सालों में रही है और संतान-नियन्त्रण की दिशा में कोई आन्दोलन सफलतापूर्वक नहीं चलाया गया, तो भविष्य स्पष्ट ही है। हमारी आबादी सन् १९५१ के ३६ करोड़ से १९६१ में लगभग ४१ करोड़, १९७१ में ४६ करोड़ तथा १९८१ में ५२ करोड़ हो जायगी।

देश के सामने उपस्थित इस गंभीर समस्या के समाधान के लिए रिपोर्ट में निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति आवश्यक बताई गई है :

१. इस समय अनाज की उपज लगभग ७०० लाख टन सालाना है, जो लगभग ९४० लाख टन सालाना हो जानी चाहिए।

२. तीन या अधिक बच्चों के बाद एक भी संतान जीवित रहने की अवस्था में इस समय ४० प्रतिशत स्त्रियों के और अधिक बच्चे हो जाते हैं। इसको घटा कर ५ प्रतिशत पर लाना चाहिए।

यह हिसाब लगाया गया है कि इन लक्ष्यों को विकास के अन्य लक्ष्यों से अधिक प्राथमिकता दी जाय, तो ४५ करोड़ आबादी होते होते हम इन लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं और फिर हमारी आबादी लगभग ४५ करोड़ पर ही स्थिर हो जायगी।

इस निष्कर्ष में जो चेतावनी है, अगर हमने उसकी अवज्ञा की और उक्त दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति को प्राथमिकता न दी, तो पंचवर्षीय

योजना की सारी बातें पूरी हो चुकने पर भी हम देखेंगे कि देश की पूरी आबादी को भरपेट भोजन और जीवन की अन्य सुविधायें नहीं प्राप्त होतीं; जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रश्न तो अलग रहा।

यद्यपि सरकार ने परिवार-नियोजन की आवश्यकता को पंचवर्षीय योजना में स्वीकार किया है और संतति-नियमन के उपाय-उपकरणों के सम्बन्ध में प्रचार करने और स्थान-स्थान पर केन्द्र खोलने एवं डाक्टर और नर्स रखने का कार्यक्रम हाथ में लिया है परन्तु जो कुछ किया जा रहा है, वह समस्या की व्यापकता और गम्भीरता को देखते नगण्य है। स्वास्थ्य मंत्रालय का इस विषय में पूरा उत्साह और लगन नहीं है। नहीं तो क्या कारण है कि अभी तक यह व्यवस्था नहीं हो सकी कि समस्त सरकारी अस्पतालों में संतति-निरोध के साधनों के विषय में परामर्श देने और आवश्यक वैज्ञानिक उपकरण वितरण करने एवं आपरेशन की व्यवस्था नहीं हुई। जो लोग आज आपरेशन कराना चाहते हैं, या जन्म-निरोध के बारे में व्यावहारिक उपायों की पूछताछ और प्राप्ति करना चाहते हैं, उनको निजी तौर पर डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है, जो अधिकांशत: अपनी फीस की ही बात सोचते हैं। यह तो इस प्रश्न के राष्ट्रीय पहलू की बात हुई, पर वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टि से भी यह अत्यन्त गम्भीर विषय है। मध्यम और गरीब श्रेणी के हर कुटुम्ब में आज अधिक सन्तान के कारण चिन्ता और कष्ट छाया हुआ है। अगर आज हर परिवार में यह भावना जागृत हो जाय कि संतान की संख्या उतनी ही हो जितनी का उचित भरण-पोषण किया जा सके, तो घरों की तबाही बच जायगी, समाज की घोर अशांति मिट जायगी और देश की कुंठित हुई मानव-शक्ति पुन: जागृत होगी।

सन्तान-जन्म की जो रफ्तार आज साधारण तौर से भारतीय कुटुम्ब में दिखाई देती है, वह दिल को दहला देती है क्योंकि दो या

तीन सन्तान के बाद होने वाली हर सन्तान के साथ गरीबी अज्ञान, बीमारी और मानसिक तनाव का आगमन होता है। ऐसी अवस्था में कृषि-विकास के लिए की जाने वाली आज की योजनाएँ उन्हें क्या और कितना दिलासा दे सकती हैं? राजकुमारी अमृतकौर के नाम लिखे हुए खुले पत्र की एक लेखिका ने अभी थोड़े दिनों पहले लिखा था—"मैं कई बच्चों की एक माँ हूँ। और मेरे सामने यह रोज का सवाल है कि कैसे घर का खर्च चलाया जाय? घर के चूल्हे को जलते रखना आज मध्यम श्रेणी की हर गृहणी के लिए बहुत बड़ी चिन्ता और परेशानी की बात हो गई है। जो रूसी लोग हमारे आबादी नियन्त्रण करने के प्रयत्न पर हंसते हैं, उनकी हंसी से न तो हमारे घर का चूल्हा जल सकता है और न हमारे घर का भाड़ा ही दिया जा सकता है। कनाडा के अतिरिक्त गेहूँ और ब्राजील की अतिरिक्त कॉफी की सुखद कल्पना से न तो मेरे बच्चों की स्कूल की फीस ही चुकाई जा सकती है और न हर जून में बदलने वाली उनकी पढ़ाई की किताब ही खरीदी जा सकती हैं। भारतीय अर्थ-नीतिज्ञों के जमीन की उत्पादन-क्षमता बढ़ाने के वक्तव्यों अथवा खाद्य-स्वावलम्बन के आँकड़ों से न तो मेरी वयस्क लड़की के विवाह और दहेज का खर्च निकल सकता है और न मेरे हर दूसरे-तीसरे साल जच्चागृह जाने के खर्च के बिल ही चुकाये जा सकते हैं।"

भारत की जिन माताओं को बराबर बच्चा पैदा करने की यातना सहन करनी पड़ती है, उनमें अब चेतना आने लगी है और वे चाहती हैं कि उनके उतने ही बच्चे हों, जितनों को वे सुविधानुसार उपयुक्त खाना, कपड़ा, शिक्षा और न्यूनतम आराम की सुविधाएँ दे सकें। जो मातायें कर्म और भाग्य के भरोसे बैठ कर नारकीय जीवन बिताना नहीं चाहतीं, और अपने पति, अपने घर, समाज और देश तथा भावी सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व की भावना रखती हैं, उन्हें सन्तति-प्रजनन के विषय में नियन्त्रण रखना ही होगा।

परिवार-नियोजन की भावना आज अधिकांश परिवारों (विशेष कर मध्यम श्रेणी के) में आ गयी है, पर कुछ तो अज्ञान और संकोच की वजह से और कुछ सस्ते और सुलभ साधन न मिलने के कारण बहुत से लोग कोई उपाय नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में सबसे बड़ी सामाजिक सेवा यह है कि जन्म-नियन्त्रण के बारे में व्यावहारिक परामर्श देने और वैज्ञानिक उपाय-उपकरण सुलभ करने के लिए जगह-जगह केन्द्र खोले जायें। रूढ़िवाद और शास्त्रवाद से इसमें भी संघर्ष लेना होगा, पर संघर्ष लेते-लेते ही तो आज तक यह प्रगति हुई है।

जन्म-निरोध के उपायों में सर्वाधिक कारगर तो निश्चित रूप से आपरेशन ही है। स्त्री और पुरुष दोनों का आपरेशन होता है। पुरुष का आपरेशन स्त्री के आपरेशन की अपेक्षा बहुत सरल और सस्ता है। बिना सूंघने की दवा दिये ही आपरेशन हो जाता है और १०-१२ घंटे आराम करके आदमी चाहे तो अपने काम में लग सकता है। स्त्री के आपरेशन के बाद ठीक होने में कुछ दिन लग जाते हैं। इसमें खर्च भी ज्यादा पड़ता है, क्योंकि निःशुल्क अस्पतालों में अभी तक परिवार-नियोजन की दृष्टि से यह आपरेशन नहीं किया जाता। पुरुष का आपरेशन अभी तक इस देश में बहुत प्रचलित नहीं हुआ है, इसलिए उसे एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक भय लगा रहता है, जिसकी वजह से वह आपरेशन कराने को जल्दी तैयार नहीं होता। डाक्टरों की राय है कि इस आपरेशन से पुरुष की कामशक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता।

आपरेशन चाहे पुरुष का हो, चाहे स्त्री का ; सबसे बड़ी बात यह है कि एक बार आपरेशन करा लेने के बाद हमेशा के लिए सन्तानोत्पादन बन्द हो जाता है। इस स्थिति के लिए स्त्री-पुरुष दोनों की पूरी मानसिक तैयारी हो, तभी आपरेशन कराना चाहिए और इस विषय में पूर्णतः आश्वस्त होने के बाद ही डाक्टर आपरेशन करते हैं।

दूसरा सबसे प्रचलित उपाय रबर की टोपियों और आवरणों का प्रयोग है। यह आजकल सब जगह मिल जाते हैं। और इनकी कीमत भी बहुत साधारण है। स्त्री को टोपी या पेसेरी का प्रयोग करना शुरू-शुरू में डाक्टरनी से सीखना पड़ता है, पर दो-एक बार प्रयोग करके सीख लेने के बाद बहुत आसान है। पुरुष द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले आवरण के विषय में सीखने या समझने की कोई खास बात नहीं है। पश्चिम के देशों में जहाँ स्त्रियाँ शिक्षित हैं, पेसेरी का प्रयोग करने की विधि ही आजकल सबसे अधिक प्रचलित है। पर जो देश अभी भी पिछड़े हुए हैं, जहाँ शिक्षा का अभाव है, वहाँ परिवार-नियोजन के विषय में पुरुषों को ही अगुवा बनना पड़ता है और वे रबर के आवरण काम में लाते हैं। पुरुष द्वारा काम में लिये जाने वाले आवरण कामानन्द में थोड़ी सी बाधा देते हैं, जब कि स्त्री द्वारा प्रयुक्त पेसेरी और कीटाणु-विनाशक मलहम के प्रयोग की विधि में यह बाधा भी नहीं है।

वैज्ञानिक लोग इस प्रयत्न में हैं कि कोई ऐसी दवा मिल जाय जिसको खाने से गर्भ-निग्रह हो जाय, पर अभी तक कोई ऐसी दवा उपलब्ध नहीं हुई है। प्रयोग किये जा रहे हैं। अगर कोई ऐसी, दवा मिल जाती तो इस कार्य में बड़ी प्रगति हो गई होती क्योंकि खास तौर से एशिया के देशों में खाने की दवा की ही ज्यादा मांग है। वीर्य के प्रजनन-कीटाणु को नष्ट करने वाली जेली या रासायनिक पदार्थों या कपड़े की थैलियों को तेल में भिगो कर योनि में रखने की विधि भी काम में लायी जाती है, पर सबसे ज्यादा प्रचलित और परखी हुई विधि आपरेशन या रबर के आवरणों की ही है। ऋतुचक्र प्रणाली (रिद्म मेथड) जिसमें किसी प्रकार के उपकरण का प्रयोग नहीं करना पड़ता, निर्भर करने योग्य तरीका नहीं माना गया है।

अन्त में व्यक्ति, घर, कुटुम्ब, समाज और राष्ट्र की दृष्टि से जो प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है, उस पर व्यक्ति को गम्भीरतापूर्वक सोचना

चाहिए और मिथ्या संकोच के आवरण को हटा कर संतति-नियमन के मार्ग पर चलना चाहिए।

'तरुण'
१५ दिसम्बर, १९५३

सन्तति-निग्रह : एक जांच तथा विश्लेषण

अत्यन्त गरीबी, भुखमरी, बीमारी और कौटुम्बिक तथा सामाजिक अशान्ति ने बहुत तेज रफ्तार से बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रश्न को आज हमारे देशवासियों के सम्मुख ला खड़ा किया है। बहुत बड़ी संख्या में देश के विचारक, विद्वान और समाज-सेवी आज इस प्रश्न पर विचार करने लगे हैं। जगह-जगह क्लबों एवं संस्थाओं में आबादी की वृद्धि को रोकने के उद्देश्य से संतति-निग्रह के विषय में विचार-वार्त्ता सुनी जाती है। देश के कई सुप्रसिद्ध मनीषी विद्वान इस प्रश्न का अध्ययन कर रहे हैं, और समय समय पर उन्होंने अपने अनुसंधानों के जो परिणाम प्रकट किये हैं, उनसे स्पष्ट है कि वर्त्तमान में बढ़ती हुई आबादी को नियन्त्रित किये बिना देश की किसी भी समस्या का समाधान एवं उन्नति संभव नहीं है। दुर्भाग्य से गरीबी के साथ ही साथ सन्तति-प्रजनन अधिक बढ़ता है, जो विभिन्न देशों के समाजशास्त्रियों द्वारा स्थिर की हुई धारणा के अनुसार ही है।

हमारा देश अभी स्वतन्त्र हुआ है। अशिक्षा और अज्ञान में अभी कोई कमी नहीं दीखती जिसके कारण रूढ़ि, अन्धविश्वास और धार्मिक जैसी कट्टरता जीवन के हर अंग में दिखाई देती है। जनसंख्या पर नियन्त्रण हो, इसका विरोध तो नहीं सा ही है पर यह नियन्त्रण कैसे हो, इसको लेकर बड़े-बड़े शिक्षित व्यक्तियों तक में अभी तक स्पष्ट चिन्तन का अभाव ही लक्षित होता है। जो चीज नई है, उसे ग्रहण करने में शिक्षित व्यक्ति भी प्राचीन संस्कारों के मूढ़ाग्रह के कारण एवं धार्मिकता और पवित्रता के नाम पर कम

हिचकिचाहट और आनाकानी नहीं करते। ऐसे लोगों के प्रतिरोध को तोड़ना आसान नहीं होता। इन्हीं सब कारणों से हमारे यहां एक जबरदस्त विचार-क्रान्ति और तदनुसार जीवन-क्रान्ति की आवश्यकता है। अज्ञान और अन्धविश्वास के विरुद्ध हमें बहुत जबरदस्त संघर्ष करना होगा और समाज का उत्थान चाहनेवाले प्रत्येक कार्यकर्त्ता और संस्था को आज विचार तथा जीवनगत क्रान्ति के लिए योग देने की आवश्यकता है। जो अज्ञान, अन्धविश्वास और गतानुगतिकता आज सन्तति-निग्रह के व्यापक प्रचार एवं व्यवहार में बाधक हैं, उनको दूर करने के लिए सब ओर से प्रयत्न होना चाहिए।

सन्तति-निरोध के सम्बन्ध में जिस जांच का हम यहां विश्लेषण कर रहे हैं, वह मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी द्वारा की गयी थी। सोसाइटी का भारत की समाजसेवी संस्थाओं में सदैव प्रमुख स्थान रहा है। सन्तति-निग्रह के अत्यन्त आवश्यक विषय की ओर ध्यान देकर सोसाइटी ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया है जिसके लिए वह बधाई की पात्र है। सोसाइटी ने अगस्त '५० में एक प्रश्नावली अपने सदस्यों तथा देश के गण्यमान्य विद्वानों एवं कार्यकर्त्ताओं के पास भेजी थी, जो लोगों का ध्यान इस प्रश्न पर आकर्षित करने में काफी सहायक सिद्ध हुई। सोसाइटी के प्रधान मन्त्री ने प्रश्नावली के साथ भेजी हुई अपनी अपील में बिलकुल ठीक लिखा है—"रोगियों को मरने से बचाने के लिए, छोटे-छोटे शिशुओं को अकाल ही मृत्यु-मुख में जाने से रोकने के लिए हम जगह-जगह अस्पताल, दवाखाना और क्लीनिक खोलते जा रहे हैं, और इसीमें हमारी दयालुता की हद समझते हैं परन्तु इन सब बुराइयों की जड़, अधिक सन्तानोत्पत्ति रोग की जड़ को काटने का अभी कहीं भी किसी ने हमारे देश में सुसंगठित प्रयत्न नहीं किया। जनता बेचारी को हम भले ही दोष दे लें, परन्तु जो समझदार हैं, जो भविष्य की बात सोचते हैं, जिनके हाथों में देश के शासन की बागडोर है, उन्होंने सर्वसाधारण में इस रोग के

प्रतीकार के लिए क्या सक्रिय कार्यवाही की ? इसकी हानि और लाभ क्या जनता को समझाये ? मेरे एक मारवाड़ी मित्र हाल ही में स्वीजरलैंड जा कर आये हैं। वहाँ की सन्तानोत्पत्ति-व्यवस्था का उनसे वर्णन सुन कर मन में ऐसा विचार आया कि हम तो सेवा की कोरी डींग ही मारते हैं; असली सेवा के तत्वों को तो हमारे वे भाई भलीभांति हृदयंगम करके अपने देश और समाज का असली कल्याण करते हैं।"

"हमारे देश में मध्यवित्त और गरीब लोगों की संख्या अधिक है। और सन्तानोत्पत्ति भी उन लोगों के यहां ही अधिक होती है। अतः उन्हें आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण हर समय अनेक प्रकार का कष्ट उठाना पड़ता है। वे न तो अपनी मनोवृत्तियों का विकास कर पाते हैं और न संसार का सच्चा सुख ही भोग सकते हैं। रात-दिन दर्जनों बच्चों की देखभाल, शिक्षा-दीक्षा, भरण-पोषण, विवाह-मृत्यु आदि के झंझटों में फंसे रह कर वे मानसिक कष्टों के शिकार बने रहते हैं। भला वे देश और समाज की सेवा कैसे कर सकते हैं ? टिड्डियों की तरह बढ़ते हुए इन असंख्य बच्चों की कौन देखभाल करे ?

"आज हम स्वतन्त्र हो गये हैं, पराधीनता से मुक्त हो गये हैं, यह सही है। परन्तु हमारे सामने देश की जड़ को खोखली करने वाले ऐसे अनेक विषैले पौधे खड़े हैं, जिनको काट डालना देश और समाज की प्रथम सेवा है। संकोच, लज्जा, भय और रूढ़ियों के मायाजाल से निकल कर हमें समाज में से अन्धकार को दूर करना है और फैलाना है उस प्रकाश को, जिसके द्वारा देश सुखी हो, समाज का विकास हो, नर-नारी स्वस्थ और निरोग हों, दरिद्रता और बहुत सन्तानों का अभिशाप दूर हो।"

प्रश्नावली के उत्तर

इस जांच के लिए जो प्रश्नावली भेजी गयी थी, उसके ५९ सज्जनों के जवाब आये हैं, जिनका संख्या-विश्लेषण निम्न प्रकार है:

प्रश्न	हाँ	नहीं
१. देश के हित में क्या संतति-नियन्त्रण आवश्यक है ?	५४	५
२. यदि हाँ तो संतति-नियन्त्रण किस उपाय से किया जाय ?		
(क) ब्रह्मचर्य द्वारा	४	
(ख) वर्तमान वैज्ञानिक प्रणालियों द्वारा	२८	
(ग) अथवा दोनों प्रणालियों द्वारा	२२	

३. अन्य सुझाव

१. कानून द्वारा लड़के-लड़कियों के विवाह की उम्र बढ़ाई जाय। लड़कियों के लिए १६ से २० वर्ष और लड़कों के लिए २४ से ३० वर्ष तक की आयु निश्चित करने के सुझाव दिये गये हैं।

२. प्रत्येक दम्पत्ति के लिए बच्चे पैदा करने की अधिक से अधिक संख्या स्थिर कर दी जाय जिससे अधिक सन्तान होने पर दण्ड-विधान लागू किया जाय। एक सुझाव यह भी दिया गया है कि चालीस वर्ष की उम्र तक ४ संतानों से ज्यादा होने पर प्रति संतान पर १००० रु० टैक्स वसूल किया जाय तथा ४० वर्ष की उम्र के बाद जो पुरुष सन्तान पैदा करे, उस पर भी प्रत्येक सन्तान के लिए १००० रु० टैक्स लगाया जाय।

३. सन्तति-नियन्त्रण के लिए हर सम्भव उपाय से जनता में प्रचार एवं आन्दोलन करके लोकमत शिक्षित किया जाय।

४. काम-विज्ञान की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाय। इससे हमारे देशवासियों की कई गलत और हानिकर धारणायें दूर होंगी तथा संतति-निग्रह की दिशा में भी मदद मिलेगी।

५. सन्तति-निरोध के वैज्ञानिक साधनों का प्रचार किया जाय और हरएक शहर में सस्ते दामों पर इनकी बिक्री की व्यवस्था की जाय। प्रसूति-गृहों में स्त्रियों को परामर्श और

साधनों के प्रयोग का शिक्षण दिया जाय।

६. आपरेशन के लिए कम खर्च पर सुविधा प्राप्त हो सके, इसकी व्यवस्था की जाय।

७. व्यक्तिगत बातचीत में इन बातों को समझाने और परामर्श देने का ज्यादा असर होगा बनिस्पत बाहरी प्रचार के। इसलिए क्लबों और गोष्ठियों में इस विषय की चर्चा को प्रोत्साहन दिया जाय।

८. धर्म और नीति के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों को हटाने का निरन्तर प्रचार तथा अन्य भांति से प्रयत्न किया जाय।

९. व्यक्ति में परिवार, समाज और देश के प्रति कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व की भावना का प्रसार किया जाय। वह यह समझने लग जाय कि जिस बच्चे को वह पैदा करता है, उसके प्रति उसकी बहुत जिम्मेदारी हो जाती है। जिम्मेदारी वह तभी ले जब कि उसको निभाने की उसमें क्षमता हो।

१०. सन्तति-निग्रह की आवश्यकता और तत्सम्बन्धी साधनों के प्रयोगों के बारे में सरल भाषा में छोटी-छोटी किताबें प्रकाशित और वितरित की जायँ।

जिन्होंने विरोध में मत दिया है, उनमें से भी एक को छोड़ कर अन्य सभी ने सन्तति-निरोध की आवश्यकता तो स्वीकार की है, सिर्फ वे वैज्ञानिक साधनों के विरोधी हैं। उनकी ओर से मुख्य आपत्तियां निम्नलिखित हैं:

(क) वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग अधार्मिक और अनैतिक है।

(ख) कृत्रिम उपायों से माता-पिता के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

(ग) इनसे बच्चा होना बन्द होता है पर शारीरिक क्षय जारी रहता है।

(घ) व्यभिचार और भ्रष्टाचार बढ़ता है।

(च) कामसुख में विघ्न होता है।

(छ) सन्तति-निग्रह के प्रयोग मानसिक विकास में बाधा पहुँचाते हैं, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है।

उक्त प्रश्नावली के अतिरिक्त सोसाइटी की ओर से देश के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्त्ताओं एवं चिकित्सा-विशेषज्ञों के पास निम्न प्रश्नावली भी भेजी गयी थी :

१. क्या आप सन्तति-निग्रह के आधुनिक साधनों के प्रयोग के पक्ष में हैं ? हां, तो क्यों ; नहीं तो क्यों ?
२. जनसाधारण में सन्तति-निग्रह सम्बन्धी प्रचार के लिए आप की राय में क्या उपाय काम में लाये जाने चाहिए ?
३. इस दिशा में सरकार का क्या कार्य हो ? कानून बनाने की आवश्यकता हो तो उसका क्या रूप हो ?
४. अन्य देशों में इस सम्बन्ध में क्या कार्य हुआ है ?
५. सन्तति-निग्रह के लिए चिकित्सा-केन्द्र खोले जायें, तो उसकी योजना क्या होनी चाहिए ?
६. आज की परिस्थितियों में ब्रह्मचर्य द्वारा सन्तति-निग्रह कहां तक सम्भव है ?

इस प्रश्नावली के उत्तर बहुत ही कम आये जिससे साफ मालूम होता है कि हमारे देश का शिक्षित जन-समुदाय भी इस महत्वपूर्ण प्रश्न के बारे में उपेक्षाशील है। जिन लोगों पर जन-स्वास्थ्य का दायित्व है और जिनको इन प्रश्नों के बारे में अधिक सोचना, मनन करना, और जनसाधारण को प्रकाश देना चाहिए, वे भी इधर जितनी चाहिए, उतनी तवज्जह नहीं देते हैं।

यह कहा जा चुका है कि जिन लोगों ने सन्तति-निग्रह के वर्तमान वैज्ञानिक साधनों के प्रयोगों पर आपत्ति की है, वे भी जन्म-संख्या पर नियन्त्रण करने के तो पक्ष में हैं। तब सवाल यह रह जाता है कि क्या ब्रह्मचर्य द्वारा अर्थात् सन्तति-निरोध के कृत्रिम उपायों के बिना ही इस समस्या का निदान सम्भव है ?

ब्रह्मचर्य के साथ हमारे यहाँ धर्म को जोड़ दिया गया है। इस लिए ब्रह्मचर्य पर आपत्ति करने में धर्म-विरोध जैसा लगता है। सही मानते हुए भी लोग ब्रह्मचर्य का विरोध करने में हिचकिचाते हैं। अगर संयम के रूप में ब्रह्मचर्य की बात हो तो हम उसके महत्व को कबूल करते हैं और जैसे जीवन के हरएक विषय में संयम अर्थात् निरति की आवश्यकता है, वैसे ही काम-भोग में भी संयम की आवश्यकता है। परन्तु जहाँ सन्तति-निरोध की आवश्यकता का प्रश्न है, वहाँ काम-सेवन को संयत और मर्यादित कर लेने से ही समस्या का हल हो जाने की गारन्टी नहीं हो सकती। हाँ, अगर यौन सम्बन्ध बिलकुल बन्द ही रखा जा सके, तो बात अलग है। हम कई लोगों को जानते हैं जो काफी संयम से और काफी कम बार काम-सम्बन्ध में प्रवृत्त होते हैं, पर इससे उनके यहाँ बच्चों की संख्या कम नहीं हुई। जहां तक काम-सम्बन्ध को बिलकुल बन्द रखने का सवाल है, हम उसे अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और असम्भव भी मानते हैं। वैज्ञानिक साधनों को अप्राकृतिक बता कर उनका विरोध करने वाले लोग पूर्ण ब्रह्मचर्य की अप्राकृतिकता से कैसे इन्कार करेंगे?

काम-सेवन में ब्रह्मचर्य और मर्यादा को महत्व देते हुए भी हमें वैज्ञानिक साधनों की आवश्यकता स्पष्ट दीखती है। इन साधनों के प्रयोग पर जो आपत्तियाँ की गयी हैं, उनके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियों में कुछ निराकरण करने की कोशिश की गयी है :

पहली आपत्ति यह है कि वैज्ञानिक उपाय अधार्मिक और अनैतिक होने के कारण अनुचित हैं। यह आपत्ति उन लोगों द्वारा उठायी जाती है जो हरएक नयी वस्तु में धर्म और नीति की हानि समझते हैं। ऐसे लोगों के पास धर्म और नीति की कोई बुद्धिसंगत परिभाषा तो है नहीं, जिसके आधार पर विवाद-विवेचना हो सके। ऐसे लोग एक दिन रेल में बैठ कर यात्रा करने पर भी आपत्ति किया करते थे और उसके द्वारा पृथ्वी को बांधने की बात भी कही

जाती थी। अगर चश्मे का प्रचार अधार्मिक और अनैतिक नही है, तो सन्तति-निरोध का प्रयोग ही अधार्मिक और अनैतिक क्यों है? धर्म और नीति का सम्बन्ध मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के साथ है। जो वस्तु इस विकास में बाधक है, वही अधार्मिक है; जो विकास में मदद देती है और समस्याओं के निराकरण में सहायक होती है, वही धार्मिक है।

दूसरी आपत्ति यह है कि कृत्रिम साधनों से स्त्री-पुरुष के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। निस्सन्देह जो वस्तु कृत्रिम है, उससे हानि होना असम्भव नहीं है। सावधानी की आवश्यकता तो हर वक्त है ही और कृत्रिम साधनों का प्रयोग कोई फैशन या मनोविनोद तो है नहीं। आवश्यकता होने पर और आपत्काल में इसका प्रयोग किया जाता है। आजकल पुरुष की वीर्यवाहिनी शिराओं का जो आपरेशन होता है, वह सबसे अधिक हानि रहित है। असल में दो-तीन बच्चों के बाद पुरुष को या स्त्री को आपरेशन करा लेना चाहिए। वैसे जिन देशों में कृत्रिम साधनों का प्रयोग अधिक होता है, वहाँ स्त्री-पुरुष के स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर नहीं दीखता। हालैण्ड का उदाहरण तो इस बात के लिए दिया जा सकता है कि सन्तति-निग्रह से स्वास्थ्य अच्छा हुआ है। असल में बार-बार गर्भ धारण करने और प्रजनन करने से स्त्री के स्वास्थ्य को जो हानि पहुँचती है, उसकी बनिस्पत कृत्रिम उपायों के प्रयोग से होने वाली हानि बहुत नगण्य है। यह भी है कि अधिक सन्तान न होने पर स्त्री-पुरुष अपने स्वास्थ्य के लिए अधिक खर्च भी कर सकते हैं।

तीसरी आपत्ति यह बतायी जाती है कि कृत्रिम साधनों से मनुष्य असंयमी हो जाता है। और सन्तान की वृद्धि रुक जाने पर भी शरीर क्षय नहीं रुकता। हम पहले ही कह चुके हैं कि असंयम और अति तो हर हालत में हानि ही पहुँचाते हैं। काम-भोग की अति से नुकसान होता है, वह चाहे कृत्रिम साधनों के प्रयोग के साथ हो

चाहे उनके बिना। बहुत से लोग तो अभी कृत्रिम साधनों के बारे में जानते तक नहीं। पर उनके जीवन में विषय भोग की अति है, और उसके असर भी स्पष्ट दीखते हैं। वास्तव में मनुष्य को अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता का बोध होना चाहिए तथा नारी की दासत्व-भावना का अन्त होना चाहिए। यह हो जाने पर गर्भ-धारण की सम्भावना को रोक लेने की शक्ति पाकर भी आदमी संयमी रह सकेगा।

व्यभिचार और भ्रष्टाचार सम्बन्धी आपत्ति के विषय में भी यही बात लागू होती है। मनुष्य में अगर ज्ञान और विवेक का विकास न हो, तो वह अच्छी से अच्छी वस्तु का भी दुरुपयोग कर सकता है पर इस सम्भावना के कारण ही अच्छी वस्तु का विरोध करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। कृत्रिम साधनों का उपयोग व्यभिचारी भी कर सकता है, इसलिए जरूरतमन्द अच्छे लोगों को भी यह उपलब्ध न होने दिया जाय, इसमें कोई तर्क नहीं है। योग के आसनों की उपादेयता शास्त्रसम्मत है, लेकिन कई लोग उनका अभ्यास विषय-भोग को बढ़ाने के लोभ से करते हैं, तो क्या आप उनको बन्द हीं करने को कहेंगे? असल में व्यभिचार और भ्रष्टाचार व्यक्ति के चरित्राभाव और समाज-व्यवस्था के दोष के कारण होता है। वह कृत्रिम साधनों के प्रयोगों का परिणाम कदापि नहीं है।

इन साधनों से यौन-समागम में आनन्द की पूर्णता प्राप्त नहीं होती, यह आपत्ति रबर की थैलियों के प्रयोग के सम्बन्ध में की जाती है। पुरुष द्वारा प्रयुक्त आवरण के बारे में कुछ हद तक यह सही भी है। पर स्त्री के द्वारा रबर के आवरण का प्रयोग सन्तति-निरोध का सबसे अधिक प्रचलित तरीका है। इससे काम-सुख में कोई बाधा नहीं होती है।

सन्तति-निरोध के प्रयोगों से मानसिक विकास में बाधा पहुँचती है, यह मनोवैज्ञानिक आपत्ति बताई जाती है। खास तौर से नारियों

के सम्बन्ध में यह बात ज्यादा कही जाती है। इसमें कोई शक नहीं कि स्त्री और पुरुष को बच्चे की चाह होती है। सामान्यतया स्त्री तो मातृत्व की बहुत भूखी रहती है; इसलिए एक भी बच्चा हो ही नहीं, इस तरह का सन्तति-निरोध मानसिक तृप्ति में विघ्न डालता है। और मानसिक जीवन को अस्वस्थ बना देता है। वास्तव में हरएक दम्पत्ति को अपनी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थिति के अनुकूल सन्तति-प्रजनन का निश्चय करके आवश्यकतानुसार ही सन्तति-निग्रहके उपाय काम में लाने चाहिए। जैसा कि हमारी स्वास्थ्य मन्त्रिणी ने कहा है, वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग के सम्बन्ध में हमारी जनता में न तो ज्ञान है, न उनको खरीद सकने जितने पैसे हैं। यह ठीक आपत्ति के रूप में तो नहीं है, पर ध्यान देने लायक बात जरूर है। जनता के उत्थान का और गरीबी को दूर करने का काम तो सरकार और जनसेवकों का है ही; साथ ही सरकार जैसे औषधियाँ महँगी होने पर भी अस्पताल चलाती है, वैसे ही सन्तति-निग्रह के केन्द्र भी चलाने चाहिए। जनता को साधन सस्ते दामों में मिल सकें, इसका भी प्रबन्ध करना चाहिए। सवाल है कि सरकार और अधिकारीवर्ग इस बढ़ती हुई आबादी के प्रश्न को कितना महत्व देते हैं? अगर आज की स्थिति में अनियंत्रित सन्तान-वृद्धि के खतरे को ठीक से हृदयंगम कर लिया जाता है, तो फिर जो कुछ सम्भव है, वह तो किया ही जायगा। तथा जो कुछ किया जा सकेगा, वही लाभकर होगा। शुरुआत हो जायगी, तो फिर सभी कुछ हो जायगा। आवश्यकता विवेक, विश्वास, साहस और कार्यशीलता की है।

'नया समाज'
फरवरी, १९५१

जन्म-निरोध अप्राकृतिक है ?

जन्म-निरोध के विरुद्ध जितने प्रकार की आपत्तियाँ की गयी हैं और आज भी की जाती हैं, उनमें सबसे अधिक प्रचलित आपत्ति यह है कि जन्म-निरोध का प्रयत्न प्रकृति-विरुद्ध है। इस आपत्ति में जन्म-निरोध का आशय जन्म-निरोध के वैज्ञानिक, कृत्रिम साधनों से ही होगा क्योंकि जिस सूरत में ब्रह्मचर्य भी जन्म-निरोध का हेतु है, उसे विरोधी लोग अप्राकृतिक नहीं बताते। पर विचारपूर्वक देखा जाय तो जन्म-निरोध की दृष्टि से ब्रह्मचर्य और तथाकथित कृत्रिम या अप्राकृतिक साधनों के प्रयोग में अन्तर ही क्या है ? जब वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा आविष्कृत उपायों का मनुष्य को पता नहीं था, तब ब्रह्मचर्य ही एक मात्र उपाय उसे मालूम था। जो लोग आज जन्म-निरोध का विरोध करते हैं, उन्होंने कभी ब्रह्मचर्य का विरोध नहीं किया, हालांकि ब्रह्मचर्य भी वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति के नियम और प्रेरणा के विरुद्ध ही है। इसका कारण यही मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य का तरीका पुराना है और जन्म-निरोध का वर्तमान तरीका नया है। नये का पुराने से विरोध और संघर्ष अवश्यम्भावी है। दुनिया का आज तक का सारा इतिहास साक्षी है कि जब-जब कोई नयी बात सामने आयी है, तब तब पुरानी मान्यताओं और विचारों को धक्का लगने की वजह से संघर्ष और विरोध पैदा हुए हैं।

पुराने जमाने में भी, जब जनसंख्या-नियंत्रण के वैज्ञानिक उपायों का आविष्कार नहीं हुआ था, कौटुम्बिक और सामाजिक दृष्टि से अधिक बच्चों की समस्या पर विचार तो किया ही जाता होगा। लेकिन उस वक्त बच्चे के जन्म को धर्म, ईश्वर तथा भाग्य या कर्म के फलाफल

से सम्बन्धित मानने के कारण साधारण आदमी इस बात को अपनी योजना-शक्ति से बाहर मानता था। प्राच्य ऋषि और समाज-नियन्ता ही नहीं, पाश्चात्य समाजवेत्ता भी अपने विचारों में इस धारणा से संचालित होते थे। जनसंख्या की समस्या पर लिखनेवालों में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थ्यूज ने भी आबादी की बढ़ती को रोकने के तीन तरीकों का उल्लेख किया है--(क) इन्द्रिय-निग्रह, (ख) अनैतिक आचरण, और (ग) विपत्ति। इन्द्रिय-निग्रह अथवा ब्रह्मचर्य हर आदमी के लिए सम्भव नहीं माना गया था। स्पष्ट है कि उसे अप्राकृतिक समझा गया था। और अनैतिक आचरण (जन्मनिरोध के वैज्ञानिक उपायों को इसी श्रेणी में शामिल किया गया था) धर्म की दृष्टि से घृणित और अग्रहणीय बताया जाता था। उस हालत में केवल विपत्ति और विनाश ही अनिवार्यत: एक तरीका बचा था। किन्तु आज मनुष्य को विज्ञान की शक्ति से जिन तरीकों का ज्ञान हो चुका है और जिनके गुण-दोषों की परीक्षा भी वह कर चुका है, उनकी उपेक्षा कर वह अगर विनाश और विपत्ति को ही अनिवार्य मान ले, तो बुद्धि का दिवाला ही समझा जायगा। आज जो प्रगति और समृद्धि हम देख रहे हैं, वह प्रकृति पर विजय प्राप्त करके ही तो सम्भव हुई है। इसे रोक कर हम कहाँ रहेंगे? प्रकृति के विरुद्ध अभियान कर उस पर विजय प्राप्त करके ही मनुष्य आज की स्थिति में पहुँचा है। समुद्र के अतल गर्भ तक वह पहुँच गया है और चन्द्र एवं सूर्य मण्डल की यात्रा का अभियान भी चल रहा है। इसमें कौन बुद्धिमानी बतायेगा कि चूँकि हमारे पूर्वजों ने यह कार्य नहीं किया, इसलिए हम जो आज कर रहे हैं, वह अप्राकृतिक है और इसलिए हमें वह नहीं करना चाहिए।

सच तो यह है कि जिसको हम सभ्यता और संस्कृति कहते हैं, वह सारी की सारी "अप्राकृतिक" ही है। जैसे प्रकृति ने हमें उत्पन्न किया था, वैसे ही हम आज नहीं हैं। न केवल रहन-सहन के तरीके

में ही परिवर्तन हुआ है, बल्कि हमारे सोचने-विचारने के तरीके भी प्राकृतिक प्रारम्भ के युग से काफी दूर हो गये हैं। कपड़े पहनना, अन्न और वनस्पति को पका कर खाना, सब कुछ अप्राकृतिक कहा जा सकता है। फिर भी हमने इनको उपयोगी समझ कर अपना लिया है। इनमें बहुत सी चीजें तो ऐसी भी हैं जिनके ज्ञान और व्यवहार को मनुष्य अपनी मानवता का गौरव समझता है। विज्ञान ने हमें जो कुछ दिया है और उससे मानव-जीवन का जो स्वरूप विकसित हुआ है, उसे छोड़ कर अगर आज हम तथाकथित प्राकृतिक मानव की कल्पना करने लगें, तो क्या वह सम्भव है, ? जिन सारी बातों को हमने प्राकृतिक मान लिया है, उनको भी शुरू में अप्राकृतिक बताया गया था। चीनी तत्ववेत्ता लाओत्से (ई० पू० ६ ठी शताब्दी) ने सड़कों, पुलों और नावों के निर्माण और प्रयोग पर भी आपत्ति की थी क्योंकि वे अप्राकृतिक चीजें थीं और जब चीनवासियों ने उनकी आपत्ति नहीं मानी तो वे चीन छोड़ कर चले गये और पश्चिम की जंगली जातियों के साथ रहने लगे।

दर असल सभ्यता और संस्कृति में हर एक नयी बात को शुरू-शुरू में अप्राकृतिक कह कर उसका विरोध किया गया है। तब आज अगर जन्म-निरोध के विरुद्ध ही यह आपत्ति की जाती है, तो इसमें क्या ताज्जुब है ? किन्तु जिस प्रकार अन्य देशों में, जहाँ विज्ञान की प्रगति हुई है और जिनको नाना भांति के नये आविष्कार करने का गौरव प्राप्त है, वहाँ जन्म निरोध का विरोध समाप्तप्राय हो गया है। उन देशों में जिस प्रकार शारीरिक और मानसिक विकास के लिए समस्त उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार जन्म-निरोध के वैज्ञानिक उपायों का भी व्यवहार होता है। हिन्दुस्तान में भी आज से दस-पन्द्रह वर्ष पहले तक जो विरोध था, वह आज कहाँ है ? उस वक्त की "अप्राकृतिक" वस्तु धीरे-धीरे प्राकृतिक बनती जा रही है। वास्तव में प्राकृतिक-अप्राकृतिक का

यह भेद बिलकुल गलत और मूर्खतापूर्ण है। प्रकृति की खोज और विजय की यात्रा में मनुष्य कहीं नहीं रुक सकता। और जितना ही आगे बढ़ेगा, उतना ही वह प्रकृति के स्वरूप को बदलेगा। प्रकृति की कितनी भीषणता, भयंकरता और हानिकारकता को मनुष्य ने विज्ञान द्वारा बदल कर सुन्दर, उपयोगी और लाभकारी वस्तु बना लिया है। आदमी के लिए हवा में उड़ना प्राकृतिक नहीं है परन्तु आज विज्ञान की शक्ति से उसने वह भी सम्भव बना लिया है। जन्म और मृत्यु को बिलकुल ईश्वराधीन मानने वाले लोग भी देख सकते हैं कि विज्ञान की देन द्वारा कितने देशों में कितनी महाभयंकर बीमारियों को हमेशा के लिए खत्म कर दिया गया है। और हर साल हजारों-लाखों आदमियों को मौत के मुंह से बचाना सम्भव हो गया है। बुद्धिमानी का तकाजा तो यही है कि हम मनुष्य के सुख-दुःख, लाभ हानि की दृष्टि से विचार करें, उचित-अनुचित का फर्क समझें और प्राकृतिक-अप्राकृतिक के भेद की आपत्ति के भ्रम में न पड़ें। मनुष्य में काम-सुख की प्रेरणा जन्मजात है और उसका दमन ही वास्तव में अप्राकृतिक है। १०० में से ६० उदाहरणों में इस दमन का भयंकर परिणाम होता है। सारा सामाजिक मानस अस्वस्थ हो जाता है जब विज्ञान की सहायता हमें उपलब्ध नहीं थी, तब यह काम-दमन एक व्यावहारिक आवश्यक बुराई के रूप में रही हो, पर आज विज्ञान की उपलब्धियाँ हमें काम-दमन और अधिक सन्तान दोनों बुराइयों से बचा सकती है।

हमारी धर्मान्धता को, ईश्वर सम्बन्धी श्रद्धा को और नीति सम्बन्धी धारणाओं को चाहे कितना भी धक्का लगे, आज बुद्धि यह मानने को तैयार न होगी कि जो कुछ हो रहा है या होता है, उसे ईश्वर कर रहा है या करता है और मनुष्य केवल उसके हाथ का खिलौना है। हम इसी धारणा को लिये शताब्दियों से बैठे हैं। पश्चिम में विज्ञान का जो उदय हुआ है, उसको हम एक निशक्त और निष्क्रिय

दर्शक की भांति देख रहे हैं। हम तो सचमुच ही ईश्वर के हाथ का खिलौना रह गये, जब कि पश्चिम ने उस ईश्वर को भी हमारी आंखों के सामने खिलौना बना डाला। एक के बाद एक ऐसे आविष्कार होते जा रहे हैं कि आज हरएक वस्तु को कार्य-कारण की वैज्ञानिक पद्धति से समझा और समझाया जा सकता है। केवल मूर्ख, अज्ञानी और निष्क्रिय लोग ही भगवान करेगा सो होगा, कहेंगे।

सन्तानोत्पत्ति और जन्म-निरोध के प्रश्नों पर भी प्रसिद्ध विचारक बरट्रेण्ड रसेल के शब्दों में, "धार्मिक कहे जाने वाले लोग कहते हैं कि भगवान जिनको पैदा करता है, उनको खाने को भी देता है और देगा। वे यह भूल जाते हैं कि उनके तथाकथित भगवान ने आज तक तो ऐसा किया नहीं। अधिक सन्तानोत्पत्ति के परिणाम स्वरूप जब जन-संख्या बढ़ी तो समय-समय पर अकाल और दूसरी विपत्तियों से लाखों-करोड़ों आदमी काल-कवलित हो गये। क्या वे यह कहना चाहते हैं कि आज तक भगवान ने चाहे ऐसा नहीं किया हो, पर आगे से वह हमारे तथाकथित प्राकृतिक जीवन के फलस्वरूप उत्पन्न हुए सब बच्चों के लिए खाद्यपदार्थों की वर्षा करेगा। कदाचित वे एक दूसरी ही बात कहें कि संसार में दुःख भोगना ही पड़े तो क्या हुआ, परलोक में तो धर्म और नीति के पालन का मीठा फल मिलेगा ही। इस मान्यता का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि बहुत सारे बच्चे जो उनके द्वारा किये गए जन्म-निरोध के विरोध के कारण उत्पन्न हो जायेंगे, सब नरक में जायेंगे। तब हमें यह मानना होगा कि वे संसार में सन्तानोत्पादन के सुनियोजन द्वारा सुव्यवस्था और सुख—वृद्धि का विरोध इसलिए करते हैं कि लाखों आदमियों को नरक में जाकर शाश्वत दुःख भोगना पड़े।"*

हमारे देश में आज भी प्रतिक्रियाशील और प्रतिक्रियावादी लोग बहुत हैं जिन्होंने अपने स्थिर स्वार्थों की रक्षा के लिए धर्म और

---

*अनपापूलर एसेज, पृष्ठ १३२.

ईश्वरपरायणता का ऐसा किला बना रखा है कि वे उससे बाहर किसी भी चीज को नहीं देखना चाहते। जो वास्तव में अप्राकृतिक है, पर जिसको धार्मिक मान लिया गया है, उसके मुकाबले में वैज्ञानिक बात को अप्राकृतिक कह कर उसका विरोध किया जाता है। विज्ञान ने हमें जो कुछ दिया है, वह वस्तुतः प्राकृतिक है। मनुष्यों के जीवन-रहस्यों और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की खोज कर ही विज्ञान ने उन विधियों और साधनों का पता लगाया है जिनके द्वारा मनुष्य की प्रकृति को, उसकी क्रियाओं को नियन्त्रित किया जा सकता है। प्रतिक्रियावादी अधिकांशतः वे लोग हैं जो अपने खुद के स्वार्थों की रक्षा और वृद्धि के लिए अधिक से अधिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करते हुए साधारण जनता को वैज्ञानिक चिन्तन और कार्य की प्रणाली को अपनाने से रोक रखना चाहते हैं। जनसाधारण में वैज्ञानिक प्रणाली के प्रचार और प्रयोग पर उन्होंने ईश्वर और धर्म की लक्ष्मण-रेखा खींच रखी है। हमारा दुर्भाग्य है कि गांधी जी और उनकी श्रद्धालु भक्त परम्परा के लोगों ने भी, पता नहीं, किस कारण से इसी अस्वस्थ विचारधारा को अपनाए रखा। उनके मुँह से भी हम यह सुनते हैं कि भगवान जिनको पैदा करता है, उनको खाने को देता ही है। भुखमरी और गरीबी की इन समस्याओं को इस प्रकार धर्म और ईश्वर के कारागार में कैद कर रखने से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। प्राकृतिक के समर्थन और अप्राकृतिक के विरोध के नाम पर प्राकृतिक जड़ता, दमन और अनाचार को अपना कर तथाकथित अप्राकृतिक विचार, विवेक और सुख-समृद्धि का विरोध करना इन प्रतिक्रियाशील धर्मात्माओं के गिरोह का एक मुख्य लक्षण है और यह गिरोह बीसवीं शताब्दी में रहने पर भी हिन्दुस्तान को सत्रहवीं शताब्दी की दीवारों में बन्द रखना चाहता है।

'नया समाज'
मई, १९५१

मार्गरेट सैंगर के साथ चालीस मिनट

गर्भ-निरोध की जननी श्रीमती मार्गरेट सैंगर द्वारा लिखित "माई फाइट फार बर्थ कन्ट्रोल" (जन्म नियन्त्रण के लिए मेरा संघर्ष) नामक पुस्तक पढ़ते-पढ़ते बम्बई पहुँचा था। जिसने इस पुस्तक को नहीं पढ़ा है, उसके लिए यह समझना बहुत मुश्किल है कि इस अकेली स्त्री ने जन्म-नियन्त्रण का न्यायपूर्ण अधिकार विश्व की प्रत्येक नारी के लिए सुलभ कर देने के प्रयत्न में पिछले चालीस वर्षों में कितना बड़ा संघर्ष किया है। पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते मुझे कई जगहों पर सन् १९३०-३२ में भारत में हुए सामाजिक-राजनीतिक संघर्ष के दिन याद आ गये थे और एक अद्भुत प्रेरणा मिलने लगी थी। बम्बई पहुँचने के साथ ही और सम्मेलन के हाल में पैर रखते ही जो सबसे पहली उत्सुकता मुझे हुई, वह उस नारी को देखने की थी जिसने पिछले चालीस वर्षों में अमेरिका से शुरू करके दुनिया के लगभग सारे देशों में परिवार-नियोजन का सन्देश पहुँचाने के लिए हर प्रकार का कष्ट और बाधा झेलते हुए तथा धर्म के ठेकेदारों एवं राज्यकर्त्ताओं के साथ संघर्ष का सामना करते हुए आन्दोलन किया है। कान्फ्रेन्स के मंच पर जो लोग बैठे थे, उनमें स्त्रियों की संख्या १५–२० से अधिक न होगी, और मेरी आँखें उनके बीच श्रीमती मार्गरेट सैंगर को ढूंढ़ रही थीं कि इतने में ही भारतीय परिवार-नियोजन संघ की अध्यक्षा श्रीमती रामाराव ने कांफ्रेन्स की कार्यवाही का प्रारम्भ करते हुए भाषण शुरू किया और सबसे पहले सम्बोधन किया श्रीमती मार्गरेट सैंगर को। श्रीमती रामाराव ने इस सम्बोधन के साथ

जिस महिला की ओर दृष्टि घुमाई, मेरी आँखें भी उसीके साथ श्रीमती मार्गरेट सेंगर को देखने के लिए घूमीं। और उस वृद्धा के चेहरे पर एक प्रखर तेज देख कर मैं अनायास ही श्रद्धावनत हो गया। पुस्तक पढ़ कर मैंने जो क़यास किया था, साक्षात् में उनको उससे कुछ अधिक ही पाया। श्रीमती रामाराव, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सर राधाकृष्णन एक के बाद एक सभी वक्ता माइक के सामने खड़े हो कर बोलते गये; लेकिन मेरे कान उनके शब्दों की ओर होते हुए भी आंखें एक टक श्रीमती सेंगर को देखती और उनके व्यक्तित्व में परिवार नियोजन के विश्व आन्दोलन के चालीस वर्ष पढ़ती रहीं। मेरा अनुमान है कि १९ राष्ट्रों से जो लगभग ५०० प्रतिनिधि कांफ्रेन्स में आये थे, उनमें से बहुतों का ध्यान बराबर श्रीमती मार्गरेट सेंगर द्वारा किये हुए संघर्ष की ओर ही होगा। इसका एक प्रमाण भी है कि कांफ्रेन्स के मंच पर जो भी बोलने को खड़ा होता था, वह मार्गरेट सेंगर के प्रति श्रद्धा निवेदन किये बिना नहीं रहता था।

मैं श्रीमती सेंगर को और नजदीक से देखना चाहता था। किताब की पंक्तियों में जो कुछ लिखा गया था और लिखा जा सकता था, उससे अधिक उनके चेहरे की झुर्रियों में पढ़ना चाहता था और उनकी जबान से जानने की उत्सुकता थी। मौका मिलते ही मैंने उनसे प्रार्थना की कि थोड़ा-सा समय वे मुझे दें और तत्काल ही उन्होंने मुझे दूसरे दिन सुबह १० बजे बुला लिया। बम्बई के ताजमहल होटल में वे ठहरी हुई थीं। मैं निश्चित समय पर वहाँ गया। सबसे पहले जो प्रश्न मैंने उनसे किया, वह था—"आपने ४० वर्ष पहले जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया था, वह आज जिस रूप में सारी दुनिया में फैल रहा है उसकी सफलता से आप अवश्य आनन्द-विभोर होंगी ?"

—"निश्चय ही, पर अभी बहुत लम्बा रास्ता बाकी है, जिसकी तरफ ही मेरा सबसे अधिक ध्यान है। जिस दिन मैंने यह काम शुरू किया

था, उसी दिन से मेरा यह विश्वास था कि दुनिया की मातृ-जाति अनिच्छित गर्भ-धारण की वेदना से एक दिन मुक्त होगी। यूरोप और अमेरिका की नारी-जाति में बहुत दूर तक यह संदेश पहुँच चुका है पर एशिया के देशों में नारी-जाति की मुक्ति के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। भारत, नेहरू का भारत अवश्य इस दिशा में नेतृत्व करेगा।"

मैंने कहा, "आज हिन्दुस्तान में उत्पादन की कमी है, इसलिए उसे अपनी आबादी घटाने की आवश्यकता है और जन्म-नियन्त्रण के कार्यक्रम को वह अपनी योजना में स्थान दे रहा है। परन्तु आगे चल कर जब हमारी उत्पादन-वृद्धि की कृषि और उद्योग-योजनायें सफल हो जायंगी और देश का उत्पादन बढ़ने लगेगा, तब क्या जन्म-नियन्त्रण...."

वाक्य पूरा होने के पहले ही श्रीमती सेंगर ने तमक कर कहा, "मैं समझ गयी—आप क्या कहना चाहते हैं। लोग अक्सर ऐसा कहते हैं, हिन्दुस्तान में ही नहीं, और जगहों पर भी। जहाँ मातृ-जाति के पीड़न का सवाल है, उसे गौण करके आप जनसंख्या को प्रधानता देने लग जाते हैं। मैंने कभी इस प्रश्न पर शासक या राजनेता के रूप में विचार नहीं किया। मेरे सामने तो हमेशा वे मातायें हैं जो एक के बाद एक पांच, सात, दस, बारह संतानों को धारण करती हैं और बिना इच्छा के लगातार गर्भ-धारण द्वारा अपने जीवन की बलि देती रहती हैं। मेरे सामने तो उन लाखों-करोड़ों बच्चों का सवाल है जिनको कभी माता का वात्सल्य और पिता का प्यार नहीं मिलता, शिक्षा प्राप्त करने और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के साधन नहीं मिलते। इस प्रश्न को राजनेताओं की अध्ययन-शालाओं से बाहर रख कर स्त्री के जीवन की आँखों से देखिये, तो आपको इसकी असलियत का पता चलेगा।"

इन शब्दों के साथ मैंने श्रीमती मार्गरेट सेंगर की आंखों में जिस वेदना की झलक देखी उसका वर्णन नहीं कर सकता। उनका हृदय इतना व्यथित हो रहा था कि मैंने बात बदल कर पूछा—

"गांधीजी से सन् १६३५ में जब आप मिली थीं, उस वक्त के कुछ संस्मरण बताइये ?"

—"दुनिया के उस महान् पुरुष से मिलने का सौभाग्य मुझे मिला था, यह मेरे जीवन की एक महान घटना बन गई। उस भेंट की बात जब मैं याद करती हूँ, तो आज भी अपने भाग्य पर गर्व करने लगती हूँ। यह ठीक है कि जन्म-नियन्त्रण के विषय पर न मैं गांधीजी का मत बदल सकी और न वे ही मुझे निरुत्तर कर सके; परन्तु उनके प्रति मेरी श्रद्धा में न उस वक्त कोई कमी आई और न आज ही कमी है:...."

मैंने पूछा—"उस वक्त से आज आप को हिन्दुस्तान में फर्क मालूम पड़ता है?"

—"बहुत बड़ा। जो कुछ फर्क हुआ है, वह होना ही था। बुद्धि के विकास के साथ नारी में नई शक्ति विकसित हुई है। विज्ञान ने मार्ग बताया है कि वह अपने जीवन को दूसरे की इच्छा का खिलवाड़ नहीं बनने देगी। भारतीय नारी भी आज जागरूक है। वह अपने शरीर को धर्म-शास्त्र और राजनीति के नाम पर किसी दूसरे के लिए मशीन बन कर नहीं रहने देगी।"

मैंने पूछा—"कम्युनिस्ट देशों में गर्भ-निरोध के आन्दोलन को प्रश्रय क्यों नहीं दिया गया? और कम्युनिस्ट विचार-धारा के लोग इसे बुर्जुआ मनोवृत्ति की बात क्यों बताते हैं? इस पर आपने कभी विचार किया है?"

—"अभी मैंने आपसे कहा न कि जिन देशों में स्वेच्छाचारी राजनेता या राजनीतिक दल का शासन है, चाहे वह कम्युनिस्ट हो, और चाहे फासिस्ट हो, वहाँ किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता नहीं रहने दी जाती। सब कुछ स्टेट की नीति से चलता है। सन् १६३४ में जब मैं रूस की जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं को निकट से देखने के उद्देश्य से वहाँ गयी थी तो मैंने देखा कि कितनी ही स्त्रियों को इंजेक्शन के द्वारा बांझ बनाया गया था और गर्भपात

भी कानून द्वारा मान्य था। लेकिन जन्म-नियन्त्रण के साधनों पर सरकार की स्वीकृति नहीं थी जिसका कारण मुझे बताया गया कि गर्भपात पर सरकार का नियन्त्रण रखा जा सकता है पर गर्भ-निरोध के साधन मुहैया हो जाने पर स्त्रियों के गर्भ-धारण पर सरकार का नियन्त्रण नहीं रह सकता। यह उत्तर शायद आज भी कम्युनिस्ट लोग देते हों। इस प्रश्न पर राजनीतिक मतवाद हो तो हो, परन्तु जहाँ तक गर्भ धारण करने और न करने के बारे में नारी के आत्माधिकार का प्रश्न है, यह उत्तर विवेकपूर्ण नहीं मालूम पड़ता। मुझे बहुत आश्चर्य और दुःख होता है कि जो लोग स्त्री-पुरुष के समानाधिकार और उनके स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व के विकास की बड़ी-बड़ी डींग भरते हैं, वे ही नारी के उस अधिकार पर आपत्ति करते हैं, जिसके साथ उनके जीवन का मूल प्रश्न संबद्ध है। क्या सचमुच यह आधुनिक युग में नारी-जीवन की एक बड़ी कदर्थना नहीं है।"

चीन के बारे में मेरे कुछ प्रश्न पूछने से पहले उन्होंने खुद ही कहा—"सन् १६३६ में मुझे चीन जाने का निमन्त्रण मिला था, पर शंघाई तक जाकर ही मुझे लौट आना पड़ा क्योंकि युद्ध का बिगुल बज चुका था। वहाँ आज क्या हालत है, मैं नहीं बता सकती। लेकिन जैसा कि मैं कह चुकी हूँ कोई भी सभ्य जाति या देश नारी के प्रजनन सम्बन्धी अधिकार पर कुठाराघात करके और नितांत व्यक्तिगत प्रश्न को भी राजनीति के धुरे के साथ बाँधे रख कर वास्तविक अर्थों में प्रगति नहीं कर सकता।"

"युद्ध के वर्षों में आप इस आन्दोलन के सम्बन्ध में क्या करती रहीं"—मैंने पूछा।

—"शंघाई से लौटते वक्त मेरे हाथ में चोट लग गयी, जिसके कारण फ्रेक्चर हो गया और कई दिन मुझे उसके कारण भुगतना पड़ा। अमेरिका में क्लिनिक्स बढ़ाने का काम चलता रहा और इसीके साथ मेरी प्रिय हॉबी पेंटिंग भी जारी थी"

—"परिवार-नियोजन के विश्व-आन्दोलन के वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में आप किस रूप में सोच रही हैं।"

—"अनियन्त्रित गति से गर्भ-धारण द्वारा होने वाले कष्टों की कहानी सारे संसार की नारियों की समान सी है, इसलिए यह आन्दोलन सारे विश्व का है। और, मैं शुरू से ही इस रूप में इसके बारे में सोचती रही हूं। इससे पहले मैं दो बार यूरोप और एशिया के कई देशों का भ्रमण कर चुकी हूँ और अब तीसरी बार जापान होती हुई यहाँ आई हूँ। युद्ध के बाद जापान में इस दिशा में काफी अच्छा काम हुआ है लेकिन वास्तव में एशिया में हिन्दुस्तान की ओर आँखें लगी हुई हैं। यहाँ की सरकार ने पुर्ननिर्माण की पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन के कार्यक्रम को स्थान देकर संसार के अन्य देशों के सामने एक उदाहरण रखा है। यह सर्वप्रथम देश है जिसने शासन-नीति-निर्धारण में इस विषय को स्थान दिया है। पश्चिमी देशों में प्रचलित जीवन-स्तर के मापदण्ड से देखें तो हिन्दुस्तान में और एशिया के अन्य देशों में जनता बहुत गरीब और अभावग्रस्त है। इसलिए जनता की हालत सुधारने के लिए देश की समृद्धि विकसित करने के साथ-साथ अनियन्त्रित जन्म-वृद्धि पर रोकथाम लगाने का काम भी बहुत जरूरी है। जब यहां की स्त्रियों को भूखी-नंगी फिरते देखती हूँ और साथ ही एक के बाद एक सन्तान को जन्म देते देखती हूं, तो मुझे लगता है कि इन देशों में अभी बहुत काम करना बाकी है। अमेरिका और इंगलैंड में तो जितना काम हो सकता था, उतना लगभग हो गया। मैं कह सकती हूँ कि वहाँ सौ में नब्बे औरतें जानती हैं कि ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनके द्वारा गर्भ-धारण को रोका जा सकता है। एशिया के देशों की स्त्रियों में अशिक्षा और अज्ञान बहुत है, जिसकी वजह से वहम और रूढ़ाग्रह कायम है। यहाँ प्रचार और आन्दोलन की काफी जरूरत है। और साथ ही उससे बड़ी जरूरत है गर्भ-निरोध के ऐसे उपाय ढूंढ़ने की, जो बहुत सस्ते हों,

सरल हों और कारगर हों। न्यूयार्क में मार्गरेट सेंगर रिसर्च ब्यूरो संप्रति इस प्रकार का उपाय ढूँढ़ने के लिए ही अनुसंधान कार्य कर रहा है। अभी तक जो साधन निकले हैं, उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसको अत्यन्त साधारण स्थिति की स्त्री की पहुँच के अन्तर्गत कहा जा सके। परन्तु प्रयत्न जारी है और जो वैज्ञानिक इस प्रकार का उपाय ढूँढ़ सकेगा, उसकी सबसे बड़ी मानव-सेवा समझी जायगी।"

समय काफी हो चला था और मुझे इससे अधिक कुछ पूछना भी नहीं था, इसलिए मैंने एक बार फिर श्रीमती सेंगर को अपनी श्रद्धा निवेदन कर छुट्टी ली। लौटा, तो यह छाप मेरे हृदय पर रही कि इस महान नारी के हृदय में उत्पन्न होकर जिस वेदना ने ४० वर्षों पहले नारी-जाति के कष्टों को दूर करने के संकल्प का रूप लिया था, वह आज भी सजीव है, सजग है और प्रेरणादायिनी है क्योंकि श्रीमती सेंगर के ही शब्दों में "करोड़ों, करोड़ों नारियाँ सारी तथाकथित सामाजिक और राजनीतिक उन्नति के बावजूद आज भी लगातार अनिच्छित गर्भ-धारण की पीड़ा सहन करने को बाध्य की जा रही हैं।" इस पीड़ा से नारी को मुक्ति प्रदान करना ही इस आन्दोलन का उद्देश्य है, और बुद्धि के विकास और विज्ञान की सहायता से यह स्वप्न, जो बहुत अंशों में सफल हो चुका है, एक दिन पूर्ण साकार रूप लेगा।"

'नया समाज'
जनवरी, १९५३.

सन्तति-नियमन और सरकार

हमारे देश की ही नहीं, दुनिया के अन्य देशों की भी जनसंख्या बहुत तेज रफ्तार से बढ़ती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप न केवल गरीबी और भुखमरी ही बढ़ रही है, बल्कि जन-स्वास्थ्य की अपार हानि भी हो रही है। इसलिए पिछले दो-तीन वर्षों से दुनिया के सारे विचारशील लोगों का ध्यान आबादी की बढ़ती के प्रश्न पर काफी गया है और जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की जो परिषद दुनिया की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करने के लिए कायम हुई है, उसके सामने भी यह प्रश्न काफी गम्भीर बना हुआ है। परिषद के तत्वावधान में दुनिया के विभिन्न देशों में कई विशेषज्ञ बढ़ती हुई आबादी के प्रश्न को हल करने के बारे में खोज और प्रचार का कार्य कर रहे हैं। भारत के भी कई विद्वान इस कार्य में सहयोग दे रहे हैं।

देश के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, शिक्षा-विशारदों, चिकित्सकों आदि का यह मत चारों ओर समर्थन पाता जा रहा है कि हिन्दुस्तान में आज जो आबादी बढ़ती जा रही है, वह हमारी जनता के स्वास्थ्य और माली हालत के लिए खतरा पैदा करेगी। इस खतरे से बचने के लिए देश का प्रगतिशील जनसमूह सन्तति-नियमन के तरीकों के प्रचार पर जोर देता रहा है। हमारी स्वास्थ्य-मंत्रिणी श्रीमती अमृतकौर ने हाल ही में स्वयं मंजूर किया है कि "जब से मैं स्वास्थ्य मंत्रिणी के पद पर आई हूँ, तभी से समाज-सुधार के क्षेत्र में मेरे साथ काम करनेवाली महिलाओं द्वारा, शिक्षित वर्ग के स्त्री-पुरुषों द्वारा भी मुझ पर जोर डाला जा रहा है कि मैं सन्तति-नियमन के

तरीके दाखिल करूं। यहां बता दूं कि मैं पूर्णतया सन्तति-नियमन के पक्ष में हूं, क्योंकि मैं महसूस करती हूं कि बार-बार होने वाली सन्तानों से खास तौर पर औरतों को बहुत दुःख भोगना पड़ता है और नौजवान माताओं के कमजोर स्वास्थ्य के कारण, जिन्हें खोई शक्ति पुनः प्राप्त करने का अवसर मिले बिना बार-बार गर्भ धारण करना पड़ता है, हमारे देश के बच्चों का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। आज के गलत पोषण, आवश्यकता से कम पोषण और बढ़ती हुई आबादी के बोझ के कारण भी मैं सन्तति-नियमन का पूर्ण समर्थन करती हूं। लेकिन उसके हिमायतियों द्वारा जो साधन सुझाये जाते हैं, उनके मैं बिलकुल खिलाफ हूँ।"

जब कि समाज-सुधार के क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं द्वारा, शिक्षित वर्ग के स्त्री-पुरुषों द्वारा और देश के प्रगतिशील विचारकों एवं स्वास्थ्य-विशेषज्ञों द्वारा सन्तति-नियमन के साधनों पर जोर दिया जा रहा है, और उनके प्रयोग से कोई हानि नहीं मानी जाती, तब हमारी स्वास्थ्य-मन्त्रिणी इन साधनों के प्रचार का विरोध करती हैं और उनके प्रचार के लिए सरकार द्वारा कुछ नहीं किया जा रहा है। उनकी सबसे बड़ी दलील है कि गांधीजी ने इसका बराबर विरोध किया और वे चाहती हैं कि "भारत बापू के प्रति सच्चा रहे।" उन्होंने इस पर ताज्जुब प्रकट किया कि "हम बापू के उपदेशों से कितनी दूर जा रहे हैं।" हमें आश्चर्य है, उन्हें इस बात पर ताज्जुब नहीं हुआ कि हम बापू के उपदेशों से दूर, काफी दूर पहले ही चले गये हैं। क्या आज सरकार जो कुछ कर रही है, वह बापू के उपदेशों के जरा भी अनुकूल है। और फिर यह भी विचार करने की जरूरत है कि बापू कभी भी विचारों की जड़ता को पसन्द नहीं करते थे।

ब्रह्मचर्य की बात अच्छी है। जो लोग ब्रह्मचर्य का सेवन करना चाहते हैं, उनके लिए कोई रोक नहीं है। पर मनुष्य की साधारण प्रकृति की तरफ से आंखें बन्द करके हम ब्रह्मचर्य का उपदेश देते

रहें या सुनते रहें और लाखों-करोड़ों अवांछित सन्तानें बढ़ाते रहें, यह स्थिति बरदास्त करना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है। करोड़ों भूखे, नंगे, अशिक्षित बच्चों को देख कर गांधीजी की आत्मा ब्रह्मचर्य के महिमामय स्तवनों से कभी खुश नहीं होगी, यह राजकुमारी जी भी सोच कर देखें। इस हिन्दुस्तान में हजारों वर्षों से ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय-निग्रह के गीत गाये जाते हैं, यह ठीक है। पर क्या यह भी ठीक नहीं है कि इन गीतों के साथ-साथ जरूरत से ज्यादा सन्तानों का जन्म भी होता रहा है। और आज उसी ब्रह्मचर्य के नाम पर हम सारे स्त्री-पुरुषों को अपनी और देश की समस्या सुलझाने के सुगम उपायों से वंचित रखना चाहते हैं। राजकुमारीजी की अन्धश्रद्धा के पीछे चलकर सारा देश क्यों तबाह हो! जब समस्या को मान लिया गया है तो उसके हल के उचित तरीकों से मुँह मोड़ना कहाँ तक उचित है? भारतीय संस्कृति और गांधीवाद के उच्च शिखर से नीचे उतर जाने का यह भय देश की जनता के साथ बड़े से बड़ा अन्याय कर रहा है। राजकुमारीजी ने कहा है कि "भारत में हमारे ऋषि-मुनियों ने हमेशा इन्द्रिय-निग्रह की हिमायत की और हम उन उत्तम परम्पराओं के प्रति सच्चे रहें।" इन ऋषि-मुनियों के जीवन की राजकुमारीजी ने सभी परीक्षायें करली हैं न! प्राचीन ग्रन्थों के पृष्ठों को फिर उलट-पुलट कर देखें। इन ऋषि-मुनियों के जीवन में ही अप्राकृतिक रूप से दबाये हुए काम के प्रवाह को किस प्रकार गन्दे रूप में फूट पड़ता देखा गया है। काम-शक्ति और उसकी उत्तेजना उतनी ही सच है, जितनी मनुष्य की मनुष्यता। इसका सर्वथा दमन नहीं किया जा सकता। किसी न किसी रूप में वह रहती है और स्वाभाविक रूप में उसे प्रकट होने का अवसर नहीं दिया जाता, तो वह अन्य रूपों में, कभी कभी बड़े गन्दे और हानिकर रूपों में, प्रकट होती है। वर्तमान विज्ञान की खोज के आधार पर यह धारणा बिलकुल बदल गयी है कि इन्द्रिय-निग्रह से मनुष्य

का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। वास्तव में अस्वाभाविक रीति से किया हुआ काम-दमन स्वास्थ्य को हानि ही पहुँचाता है। चिकित्सा-शास्त्रियों के मत से हालैण्ड के लोगों ने जब से विस्तृत पैमाने पर सन्तति नियमन के वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना शुरू किया है, तभी से वहाँ के लोगों का स्वास्थ्य काफी अच्छा हुआ है। हमारी स्वास्थ्य मन्त्रिणी का यह कथन बिलकुल निराधार और भ्रमात्मक है कि "कृत्रिम साधनों द्वारा किया जाने वाला सन्तति-नियमन पश्चिम के लोगों के लिए शारीरिक, मानसिक या नैतिक दृष्टि से सफल नहीं साबित हुआ।" राजकुमारीजी पश्चिम के एक भी देश का उदाहरण तो दें, जहाँ के लोग आज शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान के लोगों की अपेक्षा पीछे हैं। आँखें बन्द करके अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई जनता को धर्म, ईश्वर और गांधीवाद के मोहक नारे से प्रगति की दिशा से हटाना उचित नहीं है। भारतीय नारियों के स्वास्थ्य को देखिये, बच्चों की शारीरिक और मानसिक अवनति की ओर आँखें फैलाइये और चरम सीमा पर पहुँचे हुए देश के नैतिक पतन को भी देखिये। फिर कहिये कि आपके उपदेश ने जीवन की समस्याओं को हल करने में कितनी मदद पहुँचाई है। राजकुमारी जी ने राय दी है कि "लड़कियों की शादी २२ साल से पहले और लड़कों की शादी २७ से पहले न करें।" यह राय कारगर हो तो उत्तम है। ज्यों-ज्यों शिक्षा का विस्तार हो रहा है और आर्थिक दायित्व का बोध स्त्री-पुरुषों में बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों विवाह की उम्र ऊँची हो रही है, पर जिन शास्त्र-परम्पराओं के प्रति भक्ति रखने की बात स्वास्थ्य मंत्रिणी जी ने कही हैं, वह इस प्रयत्न में भी बाधक है। यह बाधा भी तभी हटेगी, जब एक बड़ी सामाजिक क्रान्ति देश में आयेगी, जो पुरानी नैतिक और सामाजिक मान्यताओं को छिन्न-भिन्न कर देगी। साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सभी स्त्री-पुरुषों के लिए उम्र की यह मर्यादा पालन करना सम्भव नहीं

होगा। इस अशिक्षा और अज्ञान में पड़े हुए देश में बड़ी उम्र तक विवाह न करनेवाले लोगों का, खास तौर से लड़कियों का विवाह होना ही मुश्किल हो जायगा। यह उचित नहीं है, पर प्रत्यक्ष स्थिति तो यही है।

बढ़ती हुई आबादी के प्रश्न पर केवल आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति की दृष्टि से ही विचार न करें, बल्कि इसके साथ जनता के यौन जीवन के स्वास्थ्य का भी प्रश्न जुड़ा हुआ है। सरकार यौन जीवन के प्रश्नों की ओर अधिक उपेक्षा नहीं कर सकती। आज की प्रगतिशील दुनिया में इन प्रश्नों की उपेक्षा करना बुद्धिहीनता का परिचय होगा। बरट्रेण्ड रसेल ने कई वर्षों पहले एक बार लिखा था कि जनता के यौन स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्नों पर सोचने, निर्णय करने और उचित मार्ग-दर्शन देने की क्षमता हमारी आज की सरकारों को चलाने वाले लोगों में नहीं है। वे लोग पुरानी सामाजिक और नैतिक मान्यताओं के बन्धन में जकड़े हुए हैं। उनसे इन प्रश्नों पर सही रोशनी पाने की आशा करना ही गलत है। बरट्रेन्ड रसेल का यह कथन चाहे पश्चिम के देशों पर आज पूरा पूरा लागू न होता हो, पर हिन्दुस्तान की सरकार पर तो पूरा-पूरा लागू होता ही है। आज हम देश में लोकतन्त्र का निर्माण और विकास करना चाहते हैं, उसकी बागडोर सम्हालने के लिए शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ और बलवान युवक-युवतियों को तैयार करना है, और यह तभी होगा, जब हम उनके स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले सारे प्रश्नों पर, जिनमें यौन जीवन के सवाल भी शामिल हैं, सही दृष्टिकोण से विचार करने की बुद्धि को अपनायेंगे और अमली कदम उठाने का साहस कर सकेंगे।

'नया समाज'
जनवरी, १९५१

जन्म-नियंत्रण और जनमत

डा० एस० चन्द्रशेखर, जिन्होंने जनसंख्या विषयक प्रश्नों पर गहन अध्ययन-अनुशीलन किया है, ने हाल ही में बम्बई में भारतीय विद्याभवन द्वारा आयोजित "जनसंख्या की समस्या और उसका निराकरण" सम्बन्धी व्याख्यानमाला के अन्तर्गत प्रथम भाषण में अपने देशवासियों को सावधान करते हुए कहा है कि आज की हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता जनसंख्या के प्रश्न को हल करने के लिए एक सुनिश्चित नीति का अवलम्बन करना है। इस विषय में किसी भांति की भावुकता को स्थान नहीं है। धार्मिक अथवा राजनीतिक कारणों से जो लोग जन्म-नियन्त्रण का विरोध करते हैं, उन्हें हमें बताना है कि हमारा दृष्टिकोण मानवतावादी है। देश की आज जैसी अवस्था है, उसमें कृषि की उन्नति तथा जनसंख्या के स्थानान्तरण से समस्या का कोई समाधान नहीं हो सकता। प्रमाण मिले हैं कि उद्योगीकरण द्वारा जनसंख्या की वृद्धि में थोड़ा अवरोध अवश्य हो सका है, पर आज तो वैज्ञानिक उपायों से ही जन्मनिरोध की योजना द्वारा मौजूदा समस्या का सबसे सफल और कारगर उपाय है, और इस तथ्य की ओर आंखें बन्द कर नहीं चला जा सकता। इस विद्वान् अर्थशास्त्री द्वारा दी गयी चेतावनी पर जनता और सरकार दोनों को अवश्य ध्यान देना चाहिए।

जब कि थोड़े से भावुक आदर्शवादियों को छोड़ कर देश में चारों तरफ से जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की आवश्यकता और तत्सम्बन्धी वैज्ञानिक उपायों के प्रचार की आवाज उठाई जा रही है, हमारी स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीमती अमृतकौर ने स्वास्थ्य मंत्रालय के बजट पर

हुई बहस का जवाब देते हुए संसद में कहा है कि सरकार जनसाधारण की भावनाओं की अवहेलना नहीं कर सकती। उनके कहने का आशय शायद यही था कि देश में जनमत जन्मनियन्त्रण के वैज्ञानिक उपायों के व्यवहार के पक्ष में नहीं है। संसद में सरकारी और विपक्षी दोनों दलों की ओर से जो वक्तृताएँ इस सम्बन्ध में हुई, उनमें एक आवाज से इस बात पर जोर दिया गया कि जिस गति से जनसंख्या पिछले दस वर्षों में बढ़ी है और आज भी बढ़ रही है, उसको रोकने के लिए सिर्फ भगवान के भरोसे बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। जिस प्रकार अन्य देशों में जनसंख्या पर नियन्त्रण रखने की दिशा में कदम उठाये गये हैं और लोक-शिक्षण का कार्य किया गया है, उसी प्रकार भारतवर्ष में भी काम होना चाहिए। इस सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा अमेरिका से डाक्टर स्टोन को बुलाने और उनके द्वारा प्रतिपादित रिदमिक सिस्टम (ऋतुचक्र विधि अथवा सुरक्षा काल की प्रणाली) के प्रचार पर खर्च करने की आलोचना भी काफी कड़े शब्दों में की गयी। एक सदस्य ने साफ-साफ यह भी कहा कि डाक्टर स्टोन ने यहाँ आकर जिस प्रणाली का प्रतिपादन किया, उसका प्रयोग अमेरिका में वे स्वयं अपने चिकित्सा केन्द्र में नहीं कर सकते। डा० चन्द्रशेखर ने भी बताया है कि डा० स्टोन ने यह प्रणाली अमेरिका में कैथोलिक संप्रदाय के लोगों के संतोष के लिए बताई है, जो जनसंख्या की वृद्धि से होने वाले भयावह परिणामों को तो अस्वीकार नहीं कर सकते, परन्तु तथाकथित "अनैतिक" वैज्ञानिक उपायों की शरण लेने का 'साहस' नहीं कर सकते। लेकिन अमरीकी समाज में भी आज इस प्रणाली की अवैज्ञानिकता और असफलता प्रकट हो चुकी है। हिन्दुस्तान में भी कैथोलिक संप्रदाय की तरह के लोगों का दल तो है ही, जो वास्तविकता का मुकाबला नहीं करना चाहते और अपनी दकियानूसी कायरता को छिपाने के लिए धर्म और नीति की आड़ लेते हैं। पर ऐसे धर्मध्वजियों की राय को जनमत

नहीं कहा जा सकता। श्रीमती अमृतकौर ने पुनः संसद के सदस्यों के सामने गांधीजी की दुहाई दी है। जिस गति से जनसंख्या की वृद्धि हो रही है और उसके कारण गरीबी और भुखमरी बढ़ती जा रही है, उसको देख कर गांधीजी क्या कहते, पता नहीं ; परन्तु ऐसा मानलें कि गांधीजी आज भी वैज्ञानिक उपायों का विरोध ही करते, तो भी स्थिति की विवशता से वैज्ञानिक साधनों की निःसंशय उपयोगिता को जनमत का समर्थन मिले बिना नहीं रहता। यह कहना कि गांधीजी को हम राष्ट्रपिता मानते हैं, तो उनके बताये हुए मार्ग पर चलने के लिए ही बाध्य हैं, बिलकुल अनुचित है। यह विचार की वैज्ञानिक प्रणाली नहीं है। जिस प्रकार हम लोग विज्ञान और विचार की प्रगति को न अपना कर पूर्वागत महापुरुषों के नाम पर आज तक पीछे पड़े रहने की भूल करते आये हैं, उसी तरह आज गांधीजी के नाम पर भी करना चाहते हैं। व्यक्तिगत रूप से जिन लोगों को विज्ञान-प्रदत्त साधनों में भौतिकता, अधार्मिकता और अनीति का भूत दीखता है, वे उनको न अपनायें और ऋषि-प्रणीत धर्म मार्ग पर चलें, परन्तु सरकार का कार्य केवल किसी एक व्यक्ति की भावुकता या श्रद्धा के आधार पर तो नहीं चलना चाहिए। जहाँ समाज में चारों ओर अस्वास्थ्यकर गंदगी फैल रही है, वहाँ मन्दिर बना कर उसमें भगवान का नाम लिये बैठे रहने से तो जीवन-रक्षा नहीं हो सकती। इस समय तो ऐसे व्यावहारिक दृष्टिकोण और साधनों की आवश्यकता है, जिससे गंदगी को रोका जा सके। आज अनियन्त्रित रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रश्न पर किसी प्रकार से अवज्ञा करना सबसे बड़ा पाप है और मन्दिर का भगवान चाहे इस पर कुछ न बोले, पर लोक—भगवान उसे कभी माफ नहीं कर सकता।

जहाँ गरीबी है, अशिक्षा है, अज्ञान है, आलस्य है और प्रजनन ही जीवन का एकमात्र मनोरंजन है, वहाँ एक बुराई का चक्र है।

गरीबी से अधिक प्रजनन और अधिक प्रजनन से गरीबी का बढ़ावा होता है। इस वर्तुल को काटे बिना देश की किसी समस्या का हल नहीं हो सकता। भारत सरकार में श्रीमती अमृतकौर की भावुक आदर्शवादिता और गांधी-भक्ति के बावजूद वैज्ञानिक विचारों का समर्थन करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। और आशा है कि सरकार की एतद सम्बन्धी भावी नीति पर इसका अच्छा असर पड़ेगा। लोकसभा में भी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों ने इस सम्बन्ध में एक स्वर से जो राय दी है, उससे सरकार की आँखें खुलेंगी और वह अपनी नीति को अधिक वास्तविकतावादी और वैज्ञानिक बनायेगी।

यद्यपि देश की भयानक गरीबी, जिसका कि जनसंख्या की वृद्धि के साथ गहरा सम्बन्ध है, के कारण उत्पन्न हुई स्थिति तो यह माँग करती है कि सरकार ऐसा कानून बनाये कि एक निर्धारित संख्या से अधिक सन्तान उत्पन्न करनेवाले माता-पिताओं को दण्ड भोगना पड़े, परन्तु जिस सरकार ने अब तक इतने आवश्यक प्रश्न पर प्रचार तक का काम नहीं किया, उससे इतना बड़ा कदम उठाने की तो आशा करना ही व्यर्थ है। परन्तु जिस प्रकार संसद के कांग्रेसी और गैर-काँग्रेसी सदस्यों ने कहा है, निम्न बातों की ओर तो सरकार को शीघ्र से शीघ्र ध्यान देना ही चाहिए—

१. जनसंख्या-नीति को देश के सामाजिक और आर्थिक हितों की दृष्टि से संचालित करने के लिए एक अलग विभाग रखा जाय, जिसको इस विषय के विशेषज्ञों का परामर्श प्राप्त हो।
२. प्रकाशन, सिनेमा और रेडियो द्वारा जन्म-नियन्त्रण सम्बन्धी विचारों और उपायों का अधिक से अधिक प्रचार किया जाय।
३ सरकारी अस्पतालों में जन्म-निरोध के लिए आपरेशन तथा वैज्ञानिक साधनों के वितरण की पूरी-पूरी सुविधाएँ हों
४. जन्म-निरोधक सामग्रियों के आयात पर लगनेवाले कर हटा दिये जायँ।

५. देश में यांत्रिक और रासायनिक जन्म-निरोधक वस्तुओं के निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाय, ताकि वे वस्तुयें अधिकाधिक सस्ते दाम में मिल सकें।

६. जो सार्वजनिक अस्पताल और सेवा-संस्थायें इस दिशा में कार्य कर रही हैं, या करना चाहें, उनको हर सम्भव तरीकों से प्रोत्साहन और सहायता दी जाय।

वास्तव में, संसद में जिस प्रकार श्रीमती अनुसूया बाई काले ने कहा है, इस समस्या पर विचार और कार्य "युद्ध स्तर" का होना चाहिए। समाज को आज गरीबी और अभाव से युद्ध करना है और जनसंख्या को नियन्त्रित किये बिना इस युद्ध में विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। वास्तव में सरकार को जनसंख्या सम्बन्धी समस्या पर व्यापक तरीके से विचार करने और एक संपूर्ण योजना प्रस्तुत करने के लिए विशेषज्ञों का एक आयोग नियुक्त करना चाहिए।

आज इस बात से इन्कार करने वाला तो शायद ही कोई मिले कि प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने की सबसे प्राथमिक आवश्यकता है। "चोंच दी है, तो भगवान चुग्गा देगा ही" वाली नीति से सोचनेवाले लोगों का हमारे अशिक्षा और अज्ञान से भरे देश में जहाँ ऐसे पढ़े-लिखे मूर्ख भी कम नही हैं, जिनको हर नये वैज्ञानिक आविष्कार में पाप और अनीति ही दीखती है, बिलकुल अभाव तो नहीं होगा। लेकिन मौजूदा स्थिति ऐसी है कि ऐसे लोगों के सारे "धार्मिक" विरोध के बावजूद जो विचार वैज्ञानिक है, वे ही चलेंगे। देश का जनमत आज जन्म-वृद्धि के संकट के प्रति पूरी तरह से जागृत हो चुका है। आज युवकों से लेकर बूढ़ों तक के बीच यह मान्यता बढ़ती चली जा रही है कि अधिक बच्चे माता-पिताओं की शारीरिक दुर्व्यवस्था तथा कौटुम्बिक और आर्थिक बर्बादी का कारण होते हैं। और अब यह भी सभी लोग जान गये हैं कि इस में भाग्य और ईश्वर की बात नहीं है, बल्कि आदमी अपनी गलती और

असावधानी से ही इस संकट में पड़ता है और आज ऐसे उपाय उपलब्ध हैं जिनके द्वारा किसी प्रकार की शारीरिक-मानसिक प्रतिक्रिया का खतरा उठाये बिना सन्तानोत्पादन पर नियन्त्रण किया जा सकता है। विज्ञान के अनुसन्धान से प्राप्त ज्ञान के आधार पर जो औषधियाँ और चिकित्सा-प्रणालियाँ निकली हैं, उनकी वैज्ञानिकता को भारतीय संस्कृति की विरोधी और पाश्चात्य उपज बतला कर उन का उपयोग करने में अपना धर्म खोने की शंका करने वाले लोग इस देश में आज भी मिल सकते हैं। परन्तु सारी दुनिया जिस ज्ञान और देन से लाभ उठा रही है, उससे वंचित रहने की साधना व्यक्तिगत चीज ही हो सकती है। इस प्रकार आज जन्म-नियन्त्रण की वैज्ञानिक विधि को इन्कार करनेवाले "ब्रह्मचारियों" की तरह भगवान के चुग्गे पर आशा और आस्था लगाये जितनी भगवान दे, उतनी संतानें पैदाकरने वाले लोगों का आदर्श जनमत की वस्तु नहीं है। आज भारतीय संस्कृति के बड़े-बड़े विद्वान और मनीषी भी जन्म-नियन्त्रण की वैज्ञानिक विधि का समर्थन करने लगे हैं। डा० भगवानदास जैसे धर्म और दर्शन के विद्वान तक ने कहा है कि केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि विशेषज्ञ वैज्ञानिकों की एक समिति से निश्चय कराके ऐसा विधान बनादे, जिससे विवाहित दम्पतियों को दो अथवा तीन तक संतति हो जाने पर शल्यकर्म करा लेना अनिवार्य हो। जो नहीं करावे और तीन से अधिक सन्तानें उत्पन्न करें, उन्हें धन दंड, कारा दंड या अन्य दंड दिया जाय।

धर्म का उद्देश्य अगर व्यक्ति और समाज के उत्थान और विकास में योग देना है, तो भारतवर्ष में आज का सबसे बड़ा धर्म सन्तानोत्पादन की वृद्धि पर रोक-थाम लगाना है। अधिक सन्तान की वजह से आज अधिकांश घरों में कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन भीषण आर्थिक कठिनाइयों से घिरा हुआ है, जिसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय परिणामों से उत्तरोत्तर क्षति हो रही है। जन्म-नियन्त्रण

इन क्षतिकर परिणामों से समाज को बचाने का अमोघ साधन है। धर्म अगर व्यक्ति और समाज के जीवन से भिन्न कोई वस्तु नहीं है तो व्यक्ति और समाज के जीवन में देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार जो परिवर्तन होते हैं, और इससे भी अधिक, जो ज्ञान की वृद्धि होती हैं, उसको देखते हुए धर्म एक पत्थर की लकीर होकर बना नहीं रह सकता। मनुष्य के शुभ विचारों का नाम ही तो धर्म है। और शुभ विचार शुभ फल के आधार पर ही तो बढ़ते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा इस समस्या का हल हो सका होता, तो आज की स्थिति ही पैदा नहीं होती। हमारी परम्परा में बड़े से बड़े ब्रह्मचारियों के मनोबल के खंडित होने का उल्लेख मिलता है उस हालत में भी हम सर्वसाधारण को ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ा कर बहु संतति के प्रवाह को रोकने में सफलता की आशा रखते हैं, इससे उद्देश्य तो पूरा होता नहीं, हाँ, ब्रह्मचर्य की महिमा गा लेने का सन्तोष अवश्य हो जाता है। आज की अवस्था में सच्चे धर्म और सच्ची नीति का तकाजा तो यह है कि हम मनुष्य को उसका अज्ञान और असावधानी बतला कर तथा उससे बचने के सम्भव तथा सुलभ उपाय बता कर सुख, शान्ति और समृद्धि का मार्ग बतायें। कलेजे पर हाथ रख कर हर भारतीय को यह विचार करना होगा कि सारे धर्म और संस्कृति की परम्परा के गौरव के बावजूद आज उसकी स्थिति सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से क्या है। क्या पाश्चात्य देशों के अल्पतम जीवन स्टैण्डर्ड से भी वह अपने को माप सकता है? तब वह अधिक धार्मिक है अथवा उन देशों के लोग, जिनकी संस्कृति को वह हमेशा शंका और घृणा से देखता है? वास्तव में इस दृष्टि में कायरता है, जो नये समाज के निर्माण और ग्रहण से दूर भागती है। हमारे धर्मोपदेशक और वैसे ही धर्म-रटना करने वाले नेता और शासन संचालक अपनी इसी प्रकार की कायरता को जनमत के सिर पर थोप कर "धर्मात्मा राजा" बने रहना चाहते हैं।

परन्तु ऐसा करने से देश की जो बर्बादी हो रही है, उसका कुफल आने वाली पीढ़ी को भोगना पड़ेगा तथा इतिहास उनको कभी क्षमा नहीं करेगा। हमें जिस समस्या का अन्त करना है, उसका समाधान जिस प्रकार हो, वैसे करना चाहिए और व्यर्थ की धर्म एवं नीति की आपत्तियाँ उठा कर जनता के अज्ञान को दूर करने के बजाय उसको और बढ़ाने में योग नहीं देना चाहिए।

'नया समाज'
सितम्बर, १९५२

जन्म-नियंत्रण और नेहरू सरकार

सुप्रसिद्ध विचारक बरट्रेण्ड रसेल ने अपनी नवीनतम पुस्तक "'न्यू होप्स फार ए चेंजिग वर्ल्ड'' में संसार में जनसंख्या की वर्तमान स्थिति से उत्पन्न समस्याओं के विषय में विचार-विश्लेषण करते हुए भारतवर्ष के बारे में लिखा है, ''संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की भांति हिन्दुस्तान में भी ऐसे पोंगापंथियों की कमी नही है, जो जन्म-नियन्त्रण की अपेक्षा गरीबी, भुखमरी, और युद्ध को बर्दास्त करना पसन्द करते हैं। लेकिन उम्मीद करनी चाहिए कि पंडित नेहरू का प्रभाव इस तरह की गलत और घातक धारणाओं को दूर करने में कारगर होगा''। बरट्रेण्ड रसेल एक बहुत बड़े विद्वान और विचारक हैं। उन्होंने विश्व की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर काफी सोचा और लिखा है। अपनी इस नई पुस्तक में उन्होंने संसार के विभिन्न देशों में उत्पन्न समस्याओं पर विचार किया है। उनकी यह मान्यता है कि द्रुत गति से बढ़ती हुई जनसंख्या वर्तमान जगत् की सारी सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा का कारण है। उन्होंने कहा है कि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि वैज्ञानिक उन्नति के परिणाम स्वरूप नये तरीकों और साधनों की मदद से उत्पादन में वृद्धि हो जाय और अधिक जनसंख्या के खाने लायक पैदावार होने लगे, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनसंख्या की वृद्धि की एक सी सीमा रहेगी, जिसका उल्लंघन होने पर जनसाधारण को बहुत सारे अनावश्यक दुःख-दारिद्रय में से होकर गुजरना होगा। आज जिन देशों ने बढ़ती हुई जनसंख्या के खतरे को समझ लिया है और जनसंख्या सम्बन्धी नीति निर्धारित कर चुके हैं, उनके यहाँ की जनता

स्वास्थ्य, शिक्षा, चरित्र एवं सामाजिक और आर्थिक प्रगति की दृष्टि से अधिक ऊँची उठ गई है और बाकी के देशों में तदपेक्षा जनसाधारण का जीवन-स्तर बहुत नीचा है ।

हिन्दुस्तान को आजादी मिले पांच वर्ष होने को आये। इस बीच हमारे बड़े से बड़े नेताओं के हाथ में देश का शासन रहा, किन्तु जनसाधारण के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। हमारा स्वास्थ्य, हमारी शिक्षा, हमारा सामाजिक जीवन वैसा ही रहा, जैसा पहले था। इसके बहुत सारे कारण हो सकते हैं, परन्तु सबसे बड़ा कारण हमारी जनसंख्या की तेज रफ्तार से बढ़ती हुई गति है। हमारे कई सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, चिकित्सकों और अर्थ-शास्त्रियों ने बहुत दफा इस बात पर जोर दिया है कि देश को संकट से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या की वृद्धि को रोका जाय। लेकिन दुर्भाग्य से हमारी सरकार ने इस ओर ठोस कदम नहीं उठाया। हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान की जनता में बहुत अशिक्षा और अज्ञान है तथा सैकड़ों-हजारों वर्षों की अन्धी सामाजिकता घर किये हुए है, जिसकी वजह से हर नई चीज का विरोध करने की हमारी आदत ही पड़ गयी है। ऐसी अवस्था में जहाँ सरकार का काम इस अज्ञान और वहम को दूर करना होना चाहिए, वहाँ अगर सरकारी पदों पर काम करने वाले लोग ही रूढ़ियों और वास्तविकता के ज्ञान और अनुभव शून्य मान्यताओं से प्रभावित होकर काम करें, तो प्रगति की कोई आशा नहीं की जा सकती। पिछले पाँच वर्षों में हमारी स्वास्थ्य-मंत्रिणी श्रीमती अमृतकौर ने जिस प्रकार से जन्म-नियन्त्रण के प्रश्न की उपेक्षा की है तथा इसके लिए होनेवाले आन्दोलन और प्रचार पर सुनी-अनसुनी की है, वह बहुत दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण कहा जायगा।

देश के विचारशील समाज-शास्त्रियों को अब अवश्य कुछ संतोष हुआ है कि राष्ट्रीय योजना आयोग ने अपनी पंचवर्षीय योजना में इस प्रश्न को यथोचित महत्व दिया है और साफ-साफ कहा है कि "तेजी

से बढ़ती हुई आबादी का हमारे देश के सीमित साधनों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ रहा है, पर तब भी जनता कुटुम्ब-योजना की आवश्यकता को अनुभव नहीं कर रही है। यह स्वीकार करना होगा कि जब तक बढ़ती हुई जनसंख्या पर निश्चित रूप से नियन्त्रण नहीं किया जायगा तब तक आबादी बढ़ती जायगी।" आयोग की रिपोर्ट में फिर आगे चलकर कहा गया है कि "जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने, बच्चों व माताओं के स्वास्थ्य सुधारने और गरीबी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे देश की जनता कुटुम्ब-योजना के महत्व को समझें। कुटुम्ब-योजना हमारे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को सुखी व समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक है।" इसके साथ ही आयोग ने जन्म-नियन्त्रण के वैज्ञानिक साधनों के प्रचार आदि के सम्बन्ध में भी सुझाव दिया है।

योजना-समिति ने जहाँ इस बात की चिन्ता प्रकट की है कि जनता कुटुम्ब-योजना की आवश्यकता को अनुभव नहीं कर पा रही है, वहाँ इस बात पर उसने कुछ नहीं कहा कि हमारी स्वास्थ्य-मंत्रिणी ने और जनहित सम्बन्धी विभागों का संचालन करने वाले अधिकारियों ने भी इस बात की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया और इस दिशा में होनेवाले आन्दोलन को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। जो भी हो, पंडित नेहरू ने इस बात का अनुभव किया है कि चालीस लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ती हुई जनसंख्या को रोकने और खाद्य संकट से देश को बचाने के लिए जन्म-नियन्त्रण की नीति को अपनाना नितान्त आवश्यक है। पं० जवाहरलाल नेहरू और दूसरे कांग्रेसी नेताओं तथा मंत्रियों में वास्तविकताओं को समझने की दृष्टि से फर्क तो है ही, मगर जवाहरलालजी को हम आज जिस प्रकार प्रतिक्रियावादियों के चंगुल में फंसा हुआ देखते हैं, उससे यह विश्वास नहीं होता कि बरट्रेण्ड रसेल की आशा पूरी हो सकेगी। पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक दफा कहा था कि अगर मेरी सरकार हो, तो चोरबाजारी करनेवालों को नजदीक से नजदीक के चौराहे पर फाँसी लगा दी

जाय। परन्तु जवाहरलालजी की सरकार बन गयी, वे प्रधान मन्त्री हो गये और चोर बाजारी करने वालों को फाँसी पर लटकाना तो दूर रहा, पैसों के जोर से वे ही सरकार पर हावी हैं। हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में जवाहरलाल जी की कुछ न चली और कोड बिल के मुख्य निर्माता डा० अम्बेदकर को इसी प्रश्न पर हट जाना पड़ा। इतना ही नहीं, जवाहरलाल जी ने पिछले चुनाव में कांग्रेस के टिकट भी उन लोगों को दे दिये, जो हिन्दू कोड बिल का खुले आम विरोध कर रहे थे। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बारे में जवाहरलाल जी अपनी प्रतिश्रुतियों के अनुसार काम नहीं कर सके। निहित स्वार्थ वाले लोगों ने मुआवजा का प्रश्न खड़ा कर जमींदारी खत्म करने के प्रयास को विफल जैसा बना दिया। इसलिए हमें सन्देह होता है कि जन्म नियन्त्रण सम्बन्धी प्रचार की योजनाओं के विषय में भी कहीं ऐसा न हो। हमें एक विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि जन्म-निरोध के सम्बन्ध में खोजबीन करने के लिए भारत सरकार की ओर से डा० अब्राहम स्टोन को अमेरिका से बुलाने का भी यही रहस्य है। डा० स्टोन तथाकथित "प्राकृतिक परिवार नियोजन" के प्रतिपोषक हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित विधि न तो सुरक्षित है और न उसका पालन हर व्यक्ति के लिए हर परिस्थिति में सम्भव ही है। वास्तव में अमेरिका में भी इस विधि का प्रचलन उन्हीं लोगों की संतुष्टि के लिए हुआ है, जो जन्म-नियन्त्रण की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं पर धार्मिक कारणों से वैज्ञानिक यानी कृत्रिम उपायों को ग्रहण करने में आपत्ति मानते हैं। इस प्रकार की आपत्ति माननेवाले लोगों की संख्या हिन्दुस्तान में तो कई गुनी ज्यादा है। ये लोग भीषण रूप से संकटपूर्ण आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण जन्म-नियन्त्रण का प्रत्यक्ष विरोध करने में तो सकुचाते हैं, पर कृत्रिम साधनों का विरोध करके जन्म-नियन्त्रण की योजना को व्यावहारिक रूप में सफल नहीं होने देना चाहते। ब्रह्मचर्य के द्वारा जनसंख्या की समस्या को व्यापक

रूप से हल किया जा सके, इसकी संभावना नहीं के बराबर है। सामूहिक दृष्टिसे जन्म-नियन्त्रण का कारगर उपाय एकमात्र वैज्ञानिक उपकरणों का व्यवहार ही है। परन्तु जिन लोगों के दिमागमें इन वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग के सम्बन्ध में नाना भांति की भ्रांत धारणायें जड़ जमाये हुए हैं, वे जिस किसी तरह भी जन्म-नियन्त्रण सम्बन्धी योजनाओं को सफल नहीं होना देने चाहते। डा० स्टोन, जिनका तरीका अमेरिका में भी सफल नहीं हो सका, को यहाँ बुलाने में भी अप्रत्यक्ष रूप से इस तरह का ही प्रयत्न मालूम होता है।

ऐसी अवस्था में नेहरूजी और उनकी सरकार जन्म-नियन्त्रण के सम्बन्ध में कितना क्या कर सकेंगे, यह कहना मुश्किल है। मुमकिन है कि व्यापक रूप में जन्म-नियन्त्रण की योजना का प्रचार होने पर पोंगापंथी लोग प्रतिरोध करें, और उसका राजनीतिक लाभ उठाने की भी चेष्टा करें, जैसा कि हिन्दू कोड बिल के बारे में हुआ। सरकार में जो लोग गये हैं, उनके खुद के दिमाग इस विषय में बहुत साफ मालूम नहीं होते। सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर वे जिस तरह सोचते आये हैं, उससे तो यही लगता है कि तेज गति से बदलती हुई सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को समझना और उनके अनुसार नये विचारों को ग्रहण कर सकना उनके लिए नितान्त असंभव साबित होगा।

जन्म-नियन्त्रण के वैज्ञानिक उपायों को विदेशी बता कर जो लोग उनका विरोध करते हैं, उनसे हमें यह कहना है कि जिन उपायों से मानव-जाति का कल्याण सम्भव है, वे सब देशों में समान रूप से ग्रहण करने योग्य हैं। आज के वैज्ञानिक युग में देश देश के बीच का अन्तर नहीं जैसा रहा है। फिर विज्ञान के जरिये आज उत्पादन और वितरण के साधनों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे एक देश तक सीमित नहीं है। हरएक देश में ये परिवर्तन पहुँच चुके हैं और इनके फलस्वरूप सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी सर्वत्र बदल

गयी हैं। पश्चिम के देशों में ये नई परिस्थितियाँ कुछ वर्षों पहले उत्पन्न हो गयी थीं, और भारतवर्ष में अब हुई हैं। इन परिस्थितियों ने हमारे विचारों पर काफी असर किया है। आज वैज्ञानिक उपायों और साधनों को ग्रहण करने से इन्कार कर हम दिनोंदिन बढ़ते हुए दुःख-दैन्य के बोझ को ढोते चलें, यह बुद्धिमानी नहीं समझी जायगी। वास्तव में जिसको धर्म और नैतिकता का सवाल बताया जाता है, वह महज आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का है। जो प्रतिक्रियावादी ताकतें इस देश में नई आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक विचारधारा को नहीं पनपने देना चाहती, वे सामाजिक-आर्थिक जीवन से उद्भूत प्रश्न को धर्म और नीति के साथ जोड़ कर जनसाधारण को गुमराह करने की कोशिश करते हैं और अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए यथास्थिति को कायम रखना चाहते हैं, जिस प्रकार हिन्दू कोड बिल के विरुद्ध "धार्मिक लड़ाई" और जमींदारी के उन्मूलन के विरुद्ध "नैतिक" कानून की लड़ाई के रूप में प्रतिगामी लोग जनता की भावनाओं को उभाड़ कर अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं, उसी प्रकार जन्म नियन्त्रण का सवाल भी बना लिया जा सकता है। हाँ, देश के शिक्षित जन-समुदाय के बारे में जरूर यह कहा जा सकता है कि उसने जन्म-नियन्त्रण की आवश्यकता को कुटुम्ब, समाज और राष्ट्र के हिताहित की दृष्टि से समझना शुरू कर दिया है तथा अपने जीवन में उस पर अमल करने की दिशा में भी कदम उठाया है। परन्तु सरकारी योजना, प्रचार और प्रोत्साहन के बिना उतना जल्दी और ज्यादा काम इस दिशा में नहीं हो सकेगा, जितने की आज की परिस्थितियों में आवश्यकता दिखाई पड़ती है। अगर नेहरू सरकार परिवार-नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम में सफल हो सकी, तो देश की बहुत सारी समस्याओं के समाधान का रास्ता खुल जायगा। क्या ऐसा हो सकेगा, अगले पाँच वर्ष ही बतायेंगे?'

'नया समाज'
अप्रैल, १९५२

राष्ट्रीय योजनाएँ और परिवार-नियोजन

लगभग ३६ वर्ष पहले विश्व-विख्यात अर्थशास्त्री जान मेनार्ड केन्स ने लिखा था कि "समय आ चुका है, जबकि प्रत्येक देश को अपनी जनसंख्या के विषय में एक सुविचारित और सुनिश्चित नीति ग्रहण करने की आवश्यकता है और एक बार नीति निर्धारित हो चुकने पर उस पर अमल करने की दिशा में हमें ठोस कदम भी उठाने चाहिए।" दुनिया के इस महान् अर्थशास्त्री के इस विचार ने विभिन्न राष्ट्रों के शासकों, राजनेताओं और विचारकों का ध्यान जनसंख्या-नीति की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। और, इस प्रश्न पर भी सोचा-समझा जाने लगा कि जनसंख्या-वृद्धि की समस्या को हल करने के लिए क्या-क्या उपाय संभव हैं और उनका किस प्रकार अवलम्बन किया जाय? इस विचारधारा ने जन्म-निरोध की वैज्ञानिक विधियों के प्रश्न को भी व्यक्तिगत और कौटुम्बिक स्तर से सामाजिक और राष्ट्रीय विचारणा के क्षेत्र में पहुँचा दिया।

जनसंख्या-वृद्धि का प्रश्न सारी दुनिया का एक बहुत बड़ा सामाजिक और आर्थिक सवाल बन गया है। विज्ञान की उत्तरोत्तर प्रगति से संसार में रोगों के निदान और चिकित्सा में अभूतपूर्व प्रगति हुई, मनुष्य के ज्ञान की परिधि बढ़ी, उसके जीवन-स्तर का विकास हुआ, और इन सबके परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य बढ़ा और औसत आयु बढ़ी। एक तरफ यह हुआ और दूसरी तरफ संतति-प्रजनन पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा; इसलिए आबादी सारे संसार में ही बढ़ती चली गई। उत्पादन के प्राकृतिक और यांत्रिक साधनों में भी काफी

अभिवृद्धि हुई और पैदावार बढ़ी, किन्तु जनसंख्या-वद्धि के अनुपात से यह वृद्धि नहीं के बराबर थी। इस स्थिति ने दुनिया के बड़े-बड़े हिस्सों में गरीबी बढ़ाई और बहुत सारी जरूरी सुख-सुविधाओं से लोगों को वंचित रहने को बाध्य किया। हिन्दुस्तान में वैसे ही गरीबी थी और अत्यधिक आबादी के कारण वह और भी बढ़ती गई। करीब २० वर्ष पहले हमारे वर्तमान प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा था कि "अगर हिन्दुस्तान गरीब है, तो उसका कारण उसके सामाजिक रीति-रिवाज, उसके बनिये और रुपये उधार देने वाले महाजन और सबसे ज्यादा उसकी बेइन्तहाशा आबादी है। ब्रिटिश सरकार इस आबादी की समस्या के बारे में क्या करना चाहती है, इसके बारे में मुझे कुछ पता नही। मैं इतना ही जानता हूँ कि अकाल, महामारी और अत्यधिक मत्यु-संख्या से मिलने वाली सारी राहत के बावजूद हमारे यहाँ आबादी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। ऐसी हालत में संतति-निरोध की बात सामने रखी जाती है और मैं पूर्णतया इसके उपायों की जानकारी के लिए अधिकाधिक प्रचार करने के पक्ष में हूँ। लेकिन इन उपायों को काम में लाने की स्थिति पैदा करने के लिए भी जनसाधारण के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। सामान्य शिक्षा का स्तर बढ़ना चाहिए और सम्पूर्ण देश में संतति-निरोध के अगणित केन्द्र खोले जाने चाहिए। देश की मौजूदा हालत में संतति-निरोध के उपाय जनसाधारण की पहुँच के बिल्कुल बाहर हैं। मध्यम श्रेणी के लोग उनसे लाभ उठा सकते हैं और मेरा ख्याल है कि वे बहुत कुछ ऐसा कर भी रहे हैं।" जिस समय श्री नेहरू ने अपनी आत्मकथा में यह विचार प्रकट किये, लगभग उसी समय कांग्रेस ने एक राष्ट्रीय योजना समिति कायम की, जिसका अध्यक्ष श्री नेहरू को ही बनाया गया। इस समिति ने एक प्रस्ताव पास कर कहा कि "सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था, कौटुम्बिक सुख और राष्ट्रीय नियोजन के हित की दृष्टि से परिवार-

नियोजन और संतति-नियन्त्रण का कार्यक्रम अत्यावश्यक है और राज्य को इस कार्य को बढ़ाने के निमित्त एक सुनिश्चित नीति का अवलम्बन करना चाहिए। यह वांछनीय है कि जन्म-नियन्त्रण के सस्ते और सुगम उपायों के बारे में खूब जोर के साथ प्रचार किया जाय। संतति-निरोध के केन्द्र खोले जाने चाहिए और अन्य आवश्यक कार्य भी होने चाहिए तथा जो गलत और नुकसानदेह तरीकों का विज्ञापन किया जाता है, उस पर रोक लगानी चाहिए।" स्मरण रहे कि संतति-निरोध के वैज्ञानिक तौर-तरीकों का महात्मा गांधी द्वारा लगभग धार्मिक कट्टरता से विरोध किये जाने के बावजूद कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति ने यह प्रस्ताव ग्रहण किया। इस समिति में कांग्रेस के चुने हुए नेताओं के अतिरिक्त देश के अनेक जाने-माने अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक और चिकित्सा-विशेषज्ञ भी थे। इससे यह निश्चित हो गया कि संतति-निरोध की आवश्यकता और उसके लिए वैज्ञानिक साधनों की उपयोगिता के विषय में देश एक सुनिश्चित योजना के पक्ष में था। लगभग इसी समय तत्कालीन भारत-सरकार के स्वास्थ्याधिकारियों का ध्यान भी इस गुरुतर प्रश्न की ओर गया। सरकार ने जो स्वास्थ्य-सर्वेक्षण और विकास-समिति नियुक्त की, उसने सन् १९४६ में अपने प्रतिवेदन में कहा—"यह सरकार की जिम्मेदारी समझी जानी चाहिए कि प्रसूति-केन्द्रों और शिशु-कल्याण केन्द्रों में तथा दवाखानों और अस्पतालों में जहाँ स्त्रियों के लिए चिकित्सा-सहायता का प्रबन्ध है, गर्भ-निरोध के बारे में सलाह देने और गर्भ-निरोध के साधन मुहैया करने का भी प्रबन्ध हो। दो और बातों की भी जरूरत है, (१) खाद्य-पदार्थों और दवाइयों की तरह ही गर्भ-निरोध सम्बन्धी चीजों के उत्पादन और विक्रय पर सरकारी नियन्त्रण रहे, (२) सरकार की ओर से गर्भ-निरोध के लिए एक सरल, सुरक्षित और कारगर उपाय के अनुसन्धान के कार्य के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाय।" धार्मिक रूढ़िवाद के विरोध के

भय से इस सरकारी समिति ने आर्थिक कारणों से जन्म-निरोध पर जोर देने की बात टाल दी थी।

सन् १९४७ में देश में राज्य-परिवर्तन हुआ और सारे सामाजिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर नये ध्येय सन्मुख रख कर और नये ढंग से विचार किया जाने लगा। राजनीतिक उलटफेर मे पैदा हुई कतिपय गम्भीर स्थितियों को पार कर लेने के बाद राष्ट्रीय सरकार ने सन् १९५० में राष्ट्रीय योजना आयोग नियुक्त किया और १९५१-५२ में उस आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रस्तुत की। यह योजना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की दृष्टि से समस्त प्रश्नों को लेकर बनाई हुई एक व्यापक कार्यतालिका थी। स्वास्थ्य-विभाग के अन्तर्गत जन-संख्या और परिवार-नियोजन के प्रश्न पर विचार करते हुए इस योजना में कहा गया कि "यद्यपि यह कहना कठिन है कि हिन्दुस्तान की अधिकतम आबादी क्या होनी चाहिए, तथापि यह स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थिति में जनसंख्या की वृद्धि होते रहने से आर्थिक हालत मजबूत नहीं बन सकी। बल्कि वह कमजोर होती गई। आज इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि अगर जन्मसंख्या को कम करने और आबादी की वृद्धि की रफ्तार घटाने के लिए उपाय नहीं किये गये तो देश का निरन्तर बढ़ता हुआ सारा प्रयास जीवनोपयोगी साधनों के वर्तमान स्तर को कायम रखने में ही लग जायगा! ......प्राकृतिक साधनों पर (जो सीमित ही होते हैं) आबादी का बढ़ता हुआ बोझ आर्थिक प्रगति को रोकता है और एक सभ्य और संस्कृत जीवन के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं की [illegible]ति को कुंठित करता है।" इस विचार-भूमिका के आधार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन के प्रचार और उसके कारगर उपायों की प्रसार की व्यवस्था के लिए सिफारिशें की गई। इस कार्य के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में ६५ लाख रुपये खर्च करने का निश्चय किया गया और कार्य की रूपरेखा निम्न प्रकार तय की गई :—

(१) सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य-केन्द्रों में परामर्शेच्छुक दम्पत्तियों को परिवार-नियोजन के विषय में सलाह देने की व्यवस्था।
(२) परिवार-नियोजन के विभिन्न साधनों के विषय में प्रयोग और अनुसन्धान की योजना।
(३) परिवार-नियोजन के तौर-तरीकों के बारे में जन-साधारण को शिक्षित करने की उचित पद्धति का विकास।
(४) देशवासियों के विभिन्न प्रतिनिधि वर्गों से प्रजनन-प्रणालियों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करना।
(५) आर्थिक, सामाजिक और जनसंख्या विषयक परिवर्तनों के अन्तवर्ती सम्बन्धों का अध्ययन-अनुशीलन।
(६) देश-विदेशों में हुए वैज्ञानिक प्रयोगों से प्राप्त अनुभव के आधार पर परिवार-नियोजन के विभिन्न तरीकों के बारे की जानकारी इकट्ठी करना और उनका अध्ययन करना।
(७) मानवीय प्रजनन-शक्ति और उसके नियन्त्रण के शरीर-वैज्ञानिक और चिकित्सा-विषयक पहलुओं का अनुसन्धान।

योजनानुसार इस कार्य के सम्बन्ध में सरकार ने दो विषयों के लिए खास समितियों का संगठन किया था—(१) नीति और पद्धति तथा (२) अनुसन्धान और कार्यक्रम। इन दोनों समितियों के द्वारा परिवार-नियोजन की दिशा में जो और जितना कार्य हुआ, वह बहुत ही असन्तोषप्रद है। प्रश्न होता है कि कार्य की गुरुता और महत्ता को इतनी अच्छी तरह समझ लेने और मान लेने के बावजूद कार्य में यह शिथिलता क्यों रही? जबकि जनसाधारण में बहुत ही नगण्य प्रचार के बावजूद इस विषय में रुचि और मांग बढ़ी तो भी सरकार ने जो बहुत ही सामान्य कार्यक्रम स्थिर किया, वह भी पूरा नहीं हो सका तथा जो ६५ लाख रुपये इस कार्य के लिए मंजूर किये थे, वे भी पूरे खर्च न हो सके। इसके कारणों की खोज करने पर हमें

सबसे मुख्य बात तो यही मालूम होती है कि योजना बनानेवालों की दृष्टि ही योजना को क्रियान्वित करनेवाले अधिकारियों और संचालकों में नहीं थी, उत्साह की तो बात ही दूर रही। केन्द्रीय स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीमती अमृतकौर स्वयं अपने व्यक्तिगत धार्मिक या सैद्धान्तिक विचारों को लेकर इस कार्य में बहुत ही उपेक्षा रखती रही। अपने जिस विरोध से वे सैद्धान्तिक आधार पर योजना-निर्माताओं के विचार और दृष्टिकोण को नही बदल सकीं, उसको वे अपने अधीन विभागीय कार्य संचालन में भांति-भांति से उपेक्षा रख और प्रतिबन्ध लगा कर तथा विघ्न उपस्थित कर पूरा करती रहीं। और, इस दुर्भाग्यपूर्ण नीति और स्थिति का ही परिणाम है कि सरकार के उक्त क्रान्तिकारी निर्णय और योजना के बावजूद परिवार-नियोजन के कार्य में जो गति अब तक आ जानी चाहिए थी, वह नहीं आ सकी। जनसंख्या-वृद्धि की रफ्तार जो पहले थी, वही अब भी है तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना के सिंहद्वार पर यह गम्भीर समस्या एक बहुत बड़ा प्रश्न-चिन्ह बन कर खड़ी हुई है। स्वास्थ्य-मन्त्रिणी को संसद में एवं बाहर भी इस उपेक्षापूर्ण दुर्नीति के लिए कई बार आड़े हाथों लिया गया है। सभाओं में, विचार-गोष्ठियों में, पत्र-पत्रिकाओं में लगभग एकमत से उनकी उपेक्षा और छिपे तौर से अवलंबित विरोधी नीति की कटु आलोचना और भर्त्सना की गई। विगत जनगणना-आयोग के अधिकारी श्री आर० ए० गोपालस्वामी ने जनसंख्या-नियन्त्रण के मामले में रखी गई इस ढुलमुल नीति के कारण देश के सामने उत्पन्न और आसन्न संकट का जो भयावह चित्र खींचा, वह स्वयं स्वास्थ्य-मंत्रिणी की नीति और कार्य की भर्त्सनापूर्ण व्याख्या है।

समस्या इतनी बड़ी और उसके समाधान के लिए चेष्टा करनेवालों का दृष्टिकोण इतना संकुचित! परिणाम हुआ कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में जो ६५ लाख रुपये इस कार्य के लिए खर्च करना निर्धारित किया गया था, वह भी सारा खर्च नहीं हो सका क्योंकि

योजना तो स्वीकार कर ली गई, उसके लिए रकम भी मंजूर हो गई, पर स्वास्थ्य-मंत्रालय ने भांति-भांति के प्रतिबन्ध लगा दिए, जिसकी वजह से कार्य का विस्तार नहीं हो सका। स्वास्थ्य-मंत्रिणी ने परिवार-नियोजन के कार्यक्रम में सुरक्षित काल विधि के प्रयोगों पर ही ध्यान केन्द्रित किया। जबकि लोगों में अत्यधिक संतति की समस्या की तीव्रता ने सारे तथाकथित धार्मिक-नैतिक विरोध की रीढ़ तोड़ दी, स्वास्थ्य-मन्त्रिणी ने अपने व्यक्तिगत विचारों के कारण इस विधि से आगे बढ़ने के लिए अपने विभाग को इजाजत नहीं दी। तथापि इस सुरक्षाकाल विधि की विफलता प्रमाणित होने में देर नहीं लगी और यह मालूम हो गया कि अगर परिवार-नियोजन के उद्देश्य को पूर्ण करना है तो कारगर वैज्ञानिक उपायों की शरण लेनी ही पड़ेगी। अब स्वास्थ्य-मंत्रिणी ने भी अन्य विधियों के प्रचार का विरोध करना छोड़ दिया।

जो भी हो, उक्त कारणों से प्रथम पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन पर जितना जोर दिया गया, उतना काम नही हो सका। योजना के निर्माण के समय कहा तो यह जाता था कि इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए ६५ लाख रुपये बहुत कम पड़ेंगे परन्तु पांच वर्ष की अवधि पूरी होने पर मालूम हुआ कि वह पूरी रकम भी खर्च नहीं हुई। वास्तव में सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि परिवार-नियोजन केन्द्रों में संतति-निरोध के साधन की चीजें बिना मूल्य दी जायें। परन्तु स्वास्थ्य-मंत्रिणी ने आजतक इस बात का विरोध कर रखा है कि सरकारी सहायता का एक पैसा भी गर्भ-निरोध की चीजें बांटने पर खर्च न किया जाय।

जिस समय दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार होने लगा तो परिवार- नयोजन के विषय में उक्त सारी स्थिति को सामने रखकर विचार किया गया। इसी बीच में एक बहुत महत्वपूर्ण बात यह हुई कि सन् १९५१ की जनगणना के अधिकारी श्री आर० ए० गोपाल-

स्वामी ने अपने प्रतिवेदन में बहुत जोर देते हुए कहा कि "आज राष्ट्र के सामने सबसे पहला काम यह वातावरण तैयार करने का है कि हर दम्पत्ति को अपने प्रति, अपने कुटुम्ब के प्रति और उस बहद् कुटुम्ब अर्थात् राष्ट्र के प्रति यह कर्तव्य मान कर चलना चाहिए कि सन्तति का भार न बढ़े। सन्तति की वृद्धि को समाज पसन्दगी की नजर से न देखे, यह आवश्यक है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। इस बात के लिए सम्पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए कि इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए आवश्यक साधनों के बारे में सलाह देने और साधन-प्राप्ति की व्यवस्था के लिए इन्तजाम हो........जहाँ कहीं आर्थिक दृष्टि से अधिक सन्तान का भी पालन-पोषण हो सकता है, वहाँ भी सन्तति-निरोध पर जोर होना चाहिए क्योंकि इसमें केवल व्यक्ति का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक राष्ट्र का सवाल है।" श्री गोपालस्वामी ने उक्त कारणों से यह परामर्श दिया कि "किसी भी दम्पत्ति के दो से अधिक सन्तान नहीं होनी चाहिए।" जनगणना अधिकारी के इन विचारों ने परिवार-नियोजन के महत्व की ओर सरकार और जन-साधारण का ध्यान आकर्षित किया और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस कार्य को बढ़ाने पर पहले से कहीं ज्यादा जोर देने की बात कही गई। केन्द्रीय सरकार की ओर से द्वितीय पंचवर्षीय योजना में परिवार-नियोजन पर ४ करोड़ रुपये खर्च किए जाएंगे। योजना-आयोग में जब से डा० जे० सी० घोष ने पद ग्रहण किया, उन्होंने इस विषय को अत्यधिक महत्व दिया है। और अब इस विषय को एक स्वतन्त्र बोर्ड के मातहत सौंपने का तय किया गया है। डा० घोष ने पिछले दिनों अखिल भारतीय परिवार नियोजन संघ की दिल्ली शाखा की ओर से आयोजित द्वि-दिवसीय गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि "भारत सरकार ने तेज रफ्तार से बढ़ती हुई जनसंख्या के खतरे को भलीभांति समझ लिया है और किसी भी तरह आबादी को घटाने के लिए उपाय करने का प्रयत्न किया जा

रहा है। सरकार दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शहरों में ३०० और ग्रामों में २००० परिवार-नियोजन केन्द्र स्थापित करने की योजना बना रही है और यह सारा कार्य उस स्वतन्त्र बोर्ड के जिम्मे रहेगा।" डा० घोष की इस घोषणा का सर्वत्र स्वागत किया गया है।

आज आबादी की समस्या जिस प्रकार प्रति मुहूर्त हमारा संकट बढ़ा रही है और घर-घर में आर्थिक, सामाजिक तनाव पैदा कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की हानि कर रही है, उसको देखते इस समस्या के साथ कुछ लोगों के व्यक्तिगत मतवाद के नाम पर खिलवाड़ नही किया जा सकता। इस विषय का सारा कार्य ऐसे व्यक्ति की देखरेख में होना चाहिए जिसमें समस्या को समझने की सूझबूझ है, कल्पना है और कार्यक्षमता है। भारत सरकार ने परिवार-नियोजन को अपनी राष्ट्रीय योजनाओं में सम्मिलित कर विश्व की अन्य सरकारों के समक्ष प्रगतिशील विचारधारा की मिसाल पेश की है। परन्तु इस दिशा में अब तक जो और जिस प्रकार कार्य हुआ है, उसे सन्तोषजनक नही कहा जा सकता। आबादी जिस गति से अग्रसर हो रही है, उसको देखते यह कार्य भी तेज गति से होना चाहिए। समस्या कितनी गम्भीर है, यह समझने के लिए हम युनाइटेड किंगडम म भारत की हाई कमिश्नर श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित द्वारा हाल ही में प्रकट किये गये उद्गारों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं—"अगर हम अपने लोकतन्त्र को सुरक्षित रखना चाहते हैं और सुखी भारत का निर्माण करना चाहते हैं तो जनसंख्या का नियंत्रण किये बिना समस्त योजनायें विफल सिद्ध होंगी।"

कांग्रेस की योजना समिति ने परिवार-नियोजन को योजना के बुनियादी प्रश्नों में सम्मिलित किया, प्रथम पंचवर्षीय योजना ने इस विषय को सरकारी मंजूरी दी और जनता में इस विचार का प्रचार करने और तथाकथित धार्मिक और नैतिक विरोध को तोड़ने में सहायता पहुँचाई, और अब दूसरी पंचवर्षीय योजना, जिसके अन्तर्गत इस विषय

पर प्रथम पंचवर्षीय योजना के मुकाबले लगभग ८ गुना रुपया खर्च किया जायगा, देश के विस्तृत और व्यापक कार्य का रूप देगी। यह प्रश्न इतना विकट और विकराल हो गया है कि जनसंख्या को काबू में किये बिना कोई मार्ग ही नहीं है। हम आशा करते हैं कि आनेवाले पांच वर्षों में सरकार इस विषय में गम्भीरतापूर्वक कार्य करेगी और इसे सफल बनाने में मजबूती के साथ अग्रसर होगी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है :—

(१) राज्य सरकारों, स्वायत्त शासन-संस्थाओं और गैरसरकारी संस्थाओं को परिवार-नियोजन केन्द्र खोलने के लिए अर्थ-सहायता देना।

(२) प्रचारकों और कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण।

(३) जनसंख्या की समस्या तथा परिवार-नियोजन की आवश्यकता और उपयोगिता के विषय में जन-शिक्षण।

(४) सन्तानोत्पत्ति और उसके नियमन के तरीकों के विषय में अनुसन्धान।

(५) आबादी के सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों और उनमें आपस में पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में एक प्रकार से जनसंख्या सम्बन्धी सारे ही प्रश्नों पर अन्वेषण-अनुसन्धान की योजना।

उक्त कार्यक्रम बहुत व्यापक और कारगर होने वाला है। इसपर अमल होने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने इस विषय को देश की नीति-निर्धारण में सम्मिलित करके अविकसित देशों को मार्ग-दर्शन दिया है। यह प्रश्न केवल हिन्दुस्तान ही नहीं बल्कि विश्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया है क्योंकि जनसंख्या सर्वत्र तेजी से बढ़ रही है। इस प्रश्न को हल किये बिना हम अपनी अन्य समस्याओं को हल नहीं कर सकते। इसलिए यह कहना झूठ नहीं है कि समस्त

योजनाओं की योजना परिवार-नियोजन है। राष्ट्र-निर्माण की हर योजना का प्रारम्भ इस योजना से होना चाहिए और ऐसा होगा तभी आज की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से मुक्ति मिलेगी।

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'
१० फरवरी, १९५७.

भारत में परिवार-नियोजन आन्दोलनका प्रारम्भ और प्रगति

हमारे देश में परिवार-नियोजन की बात वैसे तो आज भी बहुत नई-नई लगती है, परन्तु ऐतिहासिक अनुसन्धान करने पर मालूम हुआ है कि इसका प्रारम्भ आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व हो गया था। जब सन् १८७७ में इङ्गलैण्ड में निओ-मालथ्यूजियन लीग की स्थापना हुई और उसने विदेशों में संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया तो हिन्दुस्तान में भी कुछ लोग आगे आये। सन् १८८५ में तो उस लीग के वाइस-प्रेसीडेन्ट भी दो भारतीय हुए जिनके नाम श्री पी० मुरुगेसा मुदालियर (मदरास) और श्री मुथिया नायडू (पुद्दुकोटा रियासत) थे। जिन लोगों ने इस लीग के लोगों के साथ सम्पर्क रखा, उनके प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप कतिपय पत्र-पत्रिकाओं में उस लीग के नेताओं के लेख आदि भी छपे। इस प्रचार से देश में जन्म-नियन्त्रण का वातावरण, बहुत मामूली सा ही सही, बना। सन् १९२२ में लन्दन में जो प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय जन्म-नियन्त्रण सम्मेलन हुआ, उसमें भारत से प्रोफेसर अहलूवालिया गोपाल जी और प्रोफेसर पी० डी० शास्त्री सम्मिलित होने गये। परन्तु, जो कुछ अभी तक हुआ, वह लेखों और भाषणों तक ही सीमित रहा। परिवार-नियोजन के सम्बन्ध में व्यावहारिक परामर्श आदि देने की दिशा में सर्वप्रथम सन् १९२१ में प्रोफेसर आर० डी० कर्वे ने कदम उठाया। उन्होंने अपनी पत्नी के सहयोग से बम्बई में गर्भ-निरोध परामर्श केन्द्र स्थापित किया। जैसा कि स्वाभाविक ही था, प्रोफेसर कर्वे के इस कदम का तीव्र विरोध हुआ, पर वे अपने विचार में

इतने दृढ़ थे कि किसी भी विरोध के सामने झुके नहीं, और १९५४ में जब उनकी मृत्यु हुई तब तक परिवार-नियाजन के कार्य में लगे रहे। आज परिवार-नियोजन के लिए जो मार्ग प्रशस्त हुआ है, उसकी नींव डालनेवालों में वे प्रमुख थे। प्रोफेसर कर्वे और एन० एस० फड़के वगैरह ने परिवार-नियोजन की जननी श्रीमती मार्गरेट सेंगर के कई लेखों का भारत की भाषाओं में अनुवाद कराया। इस प्रकार और आन्दोलन का धार्मिक रूढिवादियों की ओर से तो तीव्र विरोध हो ही रहा था, पर सन् १९२५ के आस-पास महात्मा गाँधी ने परिवार-नियोजन की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी वैज्ञानिक साधनों द्वारा जन्म-निरोध का विरोध किया। गांधीजी के राजनीतिक और धार्मिक प्रभाव के कारण विरोधियों को बल मिला; तथापि प्रगतिशील पत्र-पत्रिकाओं ने महात्मा गांधी के विचारों का खण्डन किया। महात्माजी के विचारों के विरुद्ध राय प्रकट करनेवालों में कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी थे। उन्होंने ३० सितम्बर सन् १९२५ को श्रीमती मार्गरेट सेंगर को निम्न पत्र लिखा था:

"प्रिय मार्गरेट सेंगर,

मेरे मतानुसार जन्म-नियन्त्रण का आन्दोलन एक महान् आन्दोलन है, सिर्फ इसलिए नहीं कि इसके जरिए स्त्रियां बाधित और अवांछित मातृत्व से मुक्ति पायेंगी, बल्कि इसलिए भी कि यह किसी भी देश की अधिक जनसंख्या—जो अपने अधिकार-सम्मत सीमाओं से बाहर भी भोजन और भूमि के लिए हाथ फैलानेको बाध्य होती है—को घटाकर शान्ति के कार्य में मदद पहुँचायेगा। भारतवर्ष जैसे क्षुधा-पीड़ित देश में अविवेकपूर्वक इतने बच्चों को जन्म देना, जिनका समुचित रीत्या पालन-पोषण नहीं किया जा सकता, एक निर्दयतापूर्ण अपराध है। इससे पैदा होनेवाले बच्चे स्वयं कष्ट पाते हैं और साथ ही समस्त कुटुम्ब की दुरवस्था के भी कारण बनते हैं। यह

स्पष्ट है कि बढ़ती हुई गरीबी की असहायावस्था जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण रखने में कारगर नहीं होती। इससे यह सिद्ध होता है कि इस मामले में सभ्य सामाजिक जीवन की आवश्यकता जो चेतावनी देती है, उसकी अपेक्षा प्राकृतिक भूख ही मुख्य हो जाती है। अतएव मेरा विश्वास है कि मनुष्य में नैतिक विवेक के विकास की प्रतीक्षा करते रहना और तब तक अनेक कष्ट सहन करने के लिए और अकारण ही अकाल मृत्यु के लिए अगणित बच्चों को पैदा होते रहने देना बहुत बड़ा सामाजिक अन्याय है, जिसे बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए। आपने जो काम उठाया है और उसके लिये जो कष्ट सहन किया है, उसके वास्ते मैं आपको बधाई देता हूँ।

आपने अपने पत्र में जो साहित्य भेजने के लिए लिखा है, उसका मैं इन्तजार कर रहा हूँ और मैंने हमारे मंत्री को कहा है कि आपके "बर्थ-कंट्रोल रिव्यू" के परिवर्तन में वह "विश्वभारती" पत्रिका भेजा करें।

आपका शुभेच्छु,
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ और उनके जैसे दूसरे लोगों के विचारों का काफी प्रभाव हुआ और आन्दोलन आगे बढ़ता गया। सन् १९२८ में मदरास में सर वेपा रामेशम के द्वारा नियो-मालथ्यूजियन लीग स्थापित की गई और उसके एक वर्ष बाद शोलापुर में डा० ए० पी० पिल्ले ने "वाइव्स क्लिनिक" स्थापित किया और उसी के साथ पूना में "जन्म-निरोध लीग" की स्थापना हुई। इस लीग का भी विरोध हुआ पर इसके मंत्री श्री जी० डी० कुलकर्णी समस्त विरोध के बावजूद घर-घर जाकर प्रचार करते रहे।

अब तक जो कार्य हुआ, वह कुछ व्यक्तियों और उनके द्वारा बनाई गई संस्थाओं द्वारा हुआ था। परन्तु सन् १९३० में मैसूर राज्य ने सरकारी अस्पतालों में गर्भ-निरोध केन्द्रों की स्थापना

की। डा० मेरी स्टोप्स ने अपनी "गर्भ-निरोध" पुस्तक में बताया है कि मैसूर राज्य ने सन् १९३१ में सरकारी अस्पतालों में जो गर्भ-नियन्त्रण केन्द्र खोले, वे संसार में सरकार द्वारा खोले गये सर्व-प्रथम परिवार-नियोजन केन्द्र थे।

सन् १९३१ की जनगणना के आँकड़ों ने देश का ध्यान जनसंख्या की समस्या की ओर आकर्षित किया और १९३२ में मदरास विश्वविद्यालय की सीनेट ने गर्भ-निरोध का शिक्षण देने का प्रस्ताव पास किया।

सन् १९३६ में श्रीमती मार्गरेट सेंगर और एडिथ हाउमार्टिन यहां आई थीं। उन्होंने देश के कुछ शहरों का दौरा किया एवं कई व्यक्तियों से इस विषय पर वार्ता की। उनके आगमन से यहां के कार्यकर्त्ताओं में नया उत्साह आया। अखिल भारतवर्षीय महिला-सम्मेलन की ओर से प्रस्ताव भी पास किया गया। श्रीमती मार्गरेट सेंगर ने महात्मा गांधी से भी मुलाकात की पर, जैसा कि उन्होंने खुद १९५२ में बम्बई में एक भाषण में बताया, न गाँधीजी उनके विचार बदल सके और न वे ही गाँधीजी विचार बदल सकीं। किन्तु श्रीमती सेंगरके विचारों का देश के सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं पर प्रभाव पड़ा। उनको खास तौर से बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन ने अपनी सभा में भाषण देने को बुलाया और उनके विचार सुने। थोड़े ही दिनों बाद कारपोरेशन ने इस विषय पर एक प्रस्ताव पास किया जिसे कारपोरेशन की मेडिकल रिलीफ कमेटी ने क्रियान्वित नहीं होने दिया। इसी तरह त्रिवेन्द्रम एवं अन्य स्थानों में भी म्युनिसिपैलिटियों ने परिवार-नियोजन पर प्रस्ताव तो पास किये पर वे कार्यान्वित नहीं हुए। कलकत्ते में भी सन् १९३५ में एक वीमेन्स वेलफेयर सोसाइटी बनी और उसकी ओर से डफरिन अस्पताल में जन्म-नियन्त्रण केन्द्र भी खोला गया। बम्बई में भी सन् १९३६ में डा० ए० पी० पिल्ले और श्रीमती

कावसजी जहांगीर आदि के द्वारा जो "फेमीली हाइजीन सोसाइटी" बनी, उसकी ओर से भी दो केन्द्र खोले गये। श्रीमती जहांगीर ने मध्यम और गरीब श्रेणी के लोगों में इन केन्द्रों का काफी प्रचार किया।

सन् १९३५ में अ० भा० महिला-सम्मेलन ने श्रीमती मार्गरेट सेंगर एवं श्रीमती हाउमार्टिन के भाषण सुने और ५४ वोट पक्ष में तथा २५ विरोध में होते हुए एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें स्त्रियों की अस्वस्थता, ऊँची शिशु-मृत्यु संख्या एवं देश की बढ़ती गरीबी को रोकने के लिए परिवार-नियाजन को आवश्यक बताया एवं देश में कई परिवार-नियाजन केन्द्र खोलने की मांग की, किन्तु इस प्रस्ताव का बहुत अमली रूप सामने नहीं आया। तदनन्तर सन् १९३६ में प्रथम अ० भा० जनसंख्या सम्मेलन लखनऊ में हुआ और १९३८ में उसका दूसरा अधिवेशन बम्बई में हुआ। दोनों अधिवेशनों में जन्म-नियंत्रण का एक अलग विभाग था।

इसी समय के आसपास भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के द्वारा स्थापित राष्ट्रीय योजना समिति, जिसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू थे, ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसका आशय यह था कि देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के हक में कुटुम्ब की खुशहाली एवं राष्ट्रीय योजना की दृष्टि से परिवार-नियोजन आवश्यक है एवं राज्य को इसमें प्रोत्साहन देना चाहिए।

सन् १९४० में श्री तेजबहादुर सप्रू ने कौंसिल आफ् स्टेट में जन्म-नियंत्रण केन्द्र स्थापित करने के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया और उसमें सफलता प्राप्त की।

सन् १९४३ में बम्बई में श्रीमती धन्वन्ती रामाराव के नेतृत्व में कुछ महिलाओं ने म्युनिसिपल कारपोरेशन में परिवार-नियोजन केन्द्र खोलने के लिए फिर आन्दोलन किया। कारपोरेशन की बैठकों में ये महिलाएँ बराबर जातीं और सदस्यों को अपना दृष्टिकोण समझातीं

थीं। इनको काफी हँसी-मजाक और लांछना सहनी पड़ी पर ये अपने ध्येय पर अटल रहीं। सन् १९४४ में श्रीमती सरोजनी नायडू के बम्बई आने पर इन्होंने कारपोरेशन के मेयर से अनुरोध किया कि वे परिवार-नियोजन पर श्रीमती नायडू का व्याख्यान आयोजित करें और वैसा हुआ। श्रीमती नायडू ने इसके पक्ष में बहुत ही सारगर्भित भाषण दिया। इन सब के बावजूद साल भर तक कारपोरेशन ने अपनी प्रसूति-शालाओं में परिवार-नियोजन केन्द्र खोलना स्वीकार नहीं किया। और लगातार कई वर्षों तक आन्दोलन करने के पश्चात् बम्बई में परिवार-नियोजन केन्द्र खोले गये। इस आन्दोलन की सफलता ने अ० भा० परिवार-नियोजन संघ को जन्म दिया।

भारत सरकार के द्वारा स्थापित स्वास्थ्य-पर्यवेक्षण और विकास समिति, जिसको भोर कमेटी भी कहा जाता है, ने १९४६ में अपने प्रतिवेदन में गर्भ-निरोध की आवश्यकता पर जोर दिया एवं सरकार को सलाह दी कि अस्पतालों आदि में इसकी व्यवस्था करे। परन्तु यह समिति सफल नहीं हो सकी और निम्न जीवन-स्तर के कारणों से परिवार-नियोजन का विचार स्वीकृत नहीं करा सकी।

सन् १९४७ में बम्बई म्युनिसिपल कारपोरेशन ने परिवार-नियोजन केन्द्र खोलने का प्रस्ताव स्वीकृत किया और दो केन्द्र खोले।

सन् १९४९ में अ० भा० परिवार नियोजन संघ का निर्माण हुआ।

सन् १९५२ के प्रारम्भ में बम्बई में अन्तर्राष्ट्रीय परिवार-नियोजन सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन अ० भा० परिवार नियोजन संघ ने बुलाया। उसमें दुनिया के विभिन्न भागों से प्रसिद्ध डाक्टर एवं अर्थशास्त्री तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता आये और इस सम्मेलन ने सारे देश का ध्यान परिवार-नियोजन की आवश्यकता और महत्ता की ओर आकर्षित किया। इस सम्मेलन में मार्गरेट सेंगर की उपस्थिति महत्वपूर्ण थी।

अ० भा० परिवार-नियोजन संघ का दूसरा अधिवेशन दिसम्बर सन् १९५४ में लखनऊ में हुआ, जिसमें देश के विभिन्न भागों से सरकारी और गैर-सरकारी डाक्टर और सामाजिक कार्यकर्त्ता इस प्रश्न पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए थे। तीसरा अधिवेशन जनवरी १९५७ में कलकत्ता में हुआ जिसमें भारतके विभिन्न स्थानों से सरकारी और गैर-सरकारी कार्यकर्त्ता तो आए ही, पर कई दूसरे देशों से भी प्रतिनिधि आए जिन्होंने इस विषय में भारत की प्रगति देख कर सराहना की।

इधर सन् १९५१ की जनगणना के अधिकारी श्री आर० ए० गोपाल स्वामी ने अपनी रिपोर्ट में जनगणना के आंकड़ों का गहन अध्ययन कर देश को चेतावनी दी कि यदि जनसंख्या पर कड़ा नियंत्रण नहीं रखा जायगा तो समस्त पंचवर्षीय योजनाओं के निर्धारित लक्ष्यों की सफलता के बावजूद हमारा जीवन-स्तर निम्न से निम्नतर होता जायगा। श्री गोपालस्वामी ने बढ़ती हुई जनसंख्या के सम्बन्ध में जो विश्लेषण किया, उससे सरकार की कार्यवाही इस दिशा में और बढ़ी। जहाँ प्रथम पंचवर्षीय योजना में केवल ६५ लाख रुपये खर्च करने की व्यवस्था थी, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ४ करोड़ केन्द्र से एवं १ करोड़ विभिन्न राज्यों से खर्च करने की व्यवस्था रखी गयी है। इस कार्य के लिए एक विशेष बोर्ड भी बनाया गया है।

आज अबाध गति से बढ़ती हुई सन्तति के कारण होनेवाले कष्टों को हर व्यक्ति समझने लगा है और वह स्वतः ही यह प्रश्न करता है कि इस वृद्धि को कैसे रोका जाय? जिस बात के लिए परामर्श देने पर विरोध और लांछना का सामना करना पड़ता था, आज उसके लिए चारों तरफ मांग है। पिछले ८० वर्ष का यह इतिहास कितने विरोध और संघर्ष का है, पर आज उसकी महत्ता कितनी स्पष्ट है! समाज-सुधार का आज यही सबसे बड़ा प्रश्न है और इसकी सफलता पर भावी समाज का हमारा सारा नक्शा अवलंबित है।

'दैनिक विश्वमित्र'
५, जनवरी, १९५७.

विनोबाजी का 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' !

अभी उस दिन पत्रकारों के बीच बोलते हुए परिवार-नियोजन की योजना के बारे में पूछे गये एक प्रश्न के जवाब में विनोबाजी ने कहा* कि "जब मनुष्य के जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण (सायंटिफिक आउटलुक) आयगा, तो वह कहेगा कि कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होनी चाहिए और जिस क्रिया में पौरुष का सम्बन्ध होता है, वह तो निष्फल बिल्कुल ही नहीं होनी चाहिए।" अर्थात् अगर विषय-सेवन हो तो उसका परिणाम याने सन्तान होनी ही चाहिए, क्योंकि वह तो पौरुष का विषय है और "अगर कृत्रिम रीति से कुटुम्ब-नियोजन किया जाय और इस तरह विषय-वासना बढ़ाई जाय तथा उसमें कोई पाबन्दियां न रखी जायं, तो उसमें और 'अन्नेचुरल प्रेक्टिस' (अस्वाभाविक प्रयोगों) में क्या फर्क़ रहा?" यह विनोबा जी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण है !

दुनिया के वैज्ञानिक, जिन्होंने मनुष्य के शरीर और मन की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में अध्ययन और अनुसन्धान किया है, बताते हैं कि यौन वासना मनुष्य में जन्मजात है और उसकी जीवन-क्रिया का एक अभिन्न अंग है तथा फलाफल की आशा और विचार के बिना ही जीवन में उसका प्रेरक तत्त्व काम करता है। और, जब कि तत्व को खत्म नहीं किया जा सकता, उसके फल का नियंत्रण हो सकता है; मनुष्य की स्वाभाविक यौन-क्रिया का दमन किये बिना भी अधिक सन्तान की पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय समस्या से बचा रहा जा सकता है। विनोबाजी का वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसको अस्वाभाविक मानता है, परन्तु यौन-जीवन के सर्वथा दमन को

---

*'भूदान-यज्ञ'–६ अप्रैल, १९५६—पृष्ठ ८

अस्वाभाविक नहीं मानता। उन्होंने खेत में बोये हुए बीज के न उगने को 'नेशनल वेस्टेज' बताया और उसी उदाहरण के आधार पर कहा कि "अगर मनुष्य के बीज का भी इस्तेमाल हो और उससे फल-निर्माण न हो तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है"; अर्थात् परिवार-नियोजन का आन्दोलन 'नेशनल वेस्टेज' को बढ़ा रहा है! विनोबा जी का कहना है कि निष्फल क्रिया नहीं होनी चाहिए अर्थात् यौन-सम्बन्ध हो ही नहीं और हो तो, निष्फल न हो। पता नहीं, विनोबा जी के विज्ञान को यह पता है कि नहीं कि जहाँ क्रिया के फल पर कोई पाबन्दी नहीं है, वहाँ भी क्रिया फलवती नहीं भी हो सकती। क्रिया का सर्वथा निषेध किया जाय तो वह क्या अस्वाभाविक नहीं होगा? और क्या यह सम्भव है कि स्त्री-पुरुष केवल फल की इच्छा होने पर ही और फल की सार-सँभाल की योग्यता होने पर ही क्रिया करेंगे?

परिवार-नियोजन के समर्थक यह युक्ति देते हैं कि किसी भी महिला को गर्भ-धारण की लाचारी की स्थिति में नहीं पड़ने देना चाहिए और इसके लिए जन्म-निरोध के साधन प्राप्त हैं। उसके जवाब में भी विनोबाजी कहते हैं कि "बहनों की इतनी योग्यता क्यों न हो कि वे नाहक आक्रमण न होने दें?" जो वैज्ञानिक होता है, वह कल्पना के आधार पर नहीं चलता; वह तो ज़ीवन के वास्तविक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालता है। विनोबाजी ने किन आँकड़ों और तथ्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं, यह हमें नहीं मालूम। हिन्दुस्तान में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धो की क्या स्थिति है, स्त्री को स्वतंत्र निर्णय का कितना अधिकार है, यह उन्होंने कितनी जगह और कितनी स्त्रियों से पूछकर देखा है? जैसा कि डॉ० एस० चन्द्रशेखर ने कहा है, "स्वयं महात्मा गांधी को भी अपने विवाहित जीवन में, उनके खुद के कहे अनुसार, पूर्णतम संयम पालन की स्थिति लाने में तीस वर्ष लग गये।" तब क्या साधारण मनुष्य

इस राय को मानकर चल सकता है? एक स्वस्थ दम्पत्ति के लिए साथ-साथ रहते हुए विषय-सेवन से बिल्कुल बचकर रहना असंभव-प्राय: है। लार्ड डॉसन ने ठीक ही कहा है—"विषय-सेवन के सर्वथा निषेध द्वारा परिवार-नियोजन की सलाह मानना ही सामान्य मनुष्यों के लिए असम्भव है। इस प्रकार से संयम को लादना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है और नैतिकता के लिए भी खतरनाक है। यह असंभव है! ऐसा ही है कि प्यासे आदमी के पास पानी रखा रहे और उसको उसे पीने की मनाही हो। नहीं, यौन-जीवन का सर्वथा निषेध कर जन्म-निरोध का मार्ग कदापि कारगर नही हो सकता, और हो, तो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर है।"

विनोबाजी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विधायक पहलू यह है कि "सबको अच्छी तरह से पुरुषार्थ करने का मौका मिलेगा, तो स्वभावत: विषय-वासना पर पाबन्दियां लग जायेंगी और हिन्दुस्तान का पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना न्यूट्रीशन (पोषण) भी बढ़ेगा।" पर, जिस भयकर गरीबी, बेकारी और भुखमरी में से देश आज गुजर रहा है, उसमें यह पुरुषार्थ कैसे बढ़ेगा? वैज्ञानिक, जो विनोबाजी के कोटि के नहीं हैं, तो कहते हैं कि जो गरीब और अभावग्रस्त व्यक्ति हैं, उनके जीवनमें मनोरंजन का और कोई साधन न होकर केवल विषय-सेवन ही रह जाता है और अगर ये गरीब लोग विनोबाजी के कथनानुसार क्रिया के फल पर पाबन्दी न लगायें तो उनकी क्या गति होगी, यह सहज ही समझ में आ सकता है!

परिवार-नियोजन के विरुद्ध धार्मिक और नैतिक आधार पर जो आपत्तियां की जाती रही हैं, उन्हीं को विनोबा जी ने 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' के नाम से उपस्थित किया है। लेकिन अनियंत्रित रूप से सन्तान होते जाने के जो दुष्परिणाम जनता ने देख लिए हैं, उसके बाद इस प्रकार की आपत्तियो में कोई बल नहीं रहा। सुप्रसिद्ध लेखिका पर्ल बक ने इस तरह की आपत्तियों का जवाब देते हुए

कहा है कि "यदि आज हम अपने बुजुर्गों के जमाने के नियमों को मानकर नहीं चल सकते तो इसका कारण यह नहीं है कि हम वैसा करना चाहते नहीं, लेकिन असली कारण यह है कि जीवन की परिस्थितियां इस प्रकार बदल गई हैं कि उन नियमों को मानकर चलना सम्भव ही नहीं है; और हमें वास्तव में बाहरी सहायता की आवश्यकता है। परिवर्तन से उतनी क्षति नहीं होती जितनी इस दम्भ से कि परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। जीवन की वास्तविकताओं से मुकाबला न कर परिवर्तन से भय करना एक धोखाधड़ी है तथा मनुष्य के शरीर और मन के लिए इस धोखाधड़ी से अधिक नुक्सानकारक और कुछ नहीं है।" जीवन में वास्तविकताओं का सामना करना सबसे बड़ा वैज्ञानिक कदम है और हम जिन समस्याओं को जीवन में प्रत्यक्ष देखते हैं, उनको सिद्धान्तों और आदर्शों की बातें करके हल नहीं किया जा सकता। एक प्रसिद्ध विचारक ने कहा है कि "वैज्ञानिक साधनों से परिवार-नियोजन को अनैतिक कहा जाता है; किन्तु सामाजिक हेतु से वह उपयोगी है, इसलिए हम उसे नैतिक बनाना चाहते हैं।"

जिन लोगों ने जन-गणना के आंकड़ों पर जन्म और मृत्यु-संख्या तथा खाद्यान्न के उत्पादन के आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन किया है, वे आज भारत में सन्तान-वृद्धि—अनिवार्य क्रिया के अनिवार्य फल—को बढ़ाना पुरुषार्थ नही मानते। वे विज्ञान प्रदत्त सहायता से सन्तान-वृद्धि की समस्या को हल करने के लिए संतति-निरोध में सफलता प्राप्त करने को पुरुषार्थ मानते हैं। हमारी पिछली जन-गणना के कमिश्नर श्री आर० ए० गोपालस्वामी ने कहा—"अगर आप विज्ञान में विश्वास करते हैं तो पूरी तरह कीजिये। विज्ञान ने जिस प्रकार मृत्यु के कारणों को दूर करने और खेती के उत्पादन की वृद्धि के साधन उपलब्ध किये हैं, वैसे ही उसने कम बच्चे पैदा करने का साधन भी आपको दिया है। विज्ञान की इस सारी देन को

ही आपको काम में लाना चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता कि खेती, सफाई और चिकित्सा आदि के बारे में तो आप वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखें और जन्म-निरोध के बारे में अवैज्ञानिक दृष्टिकोण से काम लें।"

लेकिन जहाँ अवैज्ञानिक बात को ही वैज्ञानिक माना और कहा जाय, वहाँ दलील का काम जीवन की वास्तविकताओं की टक्कर ही करेगी। परिस्थितियाँ स्वयं अपना तर्क पैदा करेंगी और उनसे ये सारे अवैज्ञानिक 'वैज्ञानिक' विश्वास, धारणाएँ और मान्यताएँ बदल जायेंगी, ख़तम हो जायेंगी।

'तरुण'
१५, दिसम्बर, १९५६.

—:०:—

८, ९, १०

जो गरीब छात्राएँ अर्थाभावके कारण शिक्षण-शुल्क नहीं दे पाने की वजहसे अपना अध्ययन-क्रम आगे चला पानेमें असमर्थ हैं, उनको छात्र-वृत्ति देनेके लिए एक शिक्षा-संस्थाने पाँच व्यक्तियोंकी जो उप-समिति कायम की है, उसके सदस्यके नाते मैं आवेदनकारी छात्राओं से इन्टरव्यू कर रहा हूँ। ४० छात्राएँ हैं, जो एक-एक करके समितिके सामने बुलाई जा रही हैं और हम उनकी पढ़ाईकी पूर्व व्यवस्था और भावी योजनाके बारेमें पूछ-ताछ करनेके साथ-साथ उनकी गरीबीकी स्थितिकी भी जाँच-पड़ताल करना चाहते हैं, ताकि छात्रवृत्ति उन्हीको मिले, जो वास्तवमें जरूरतमन्द हैं। मैं हर छात्रासे पूछ रहा हूँ—उसके घर की कुल आमदनी कितनी है और कितनोंका खाना-पीना और पढ़ना आदि उसपर निर्भर करता है। ४० लड़कियोंमें से केवल ३ लड़कियोंने अपने भाई-बहनोंकी कुल संख्या ८ से कम बताई; बाकी ३७ ने ८,९ या १० और दो-चारने तो उससे भी ज्यादा बताई। आमदनी रु० १००) और रु० २००) प्रतिमासके बीच बताई। गरीबी साफ है। संयुक्त परिवार तो है ही। मैं सोच रहा हूँ—एक दम्पत्ति, जिसके ८ या अधिक संतान—लड़के भी और लड़कियां भी; और कुछ परिवारोंमें तो बूढ़े माता-पिता, कुमारी या विधवा बहिनें भी होंगी ही। सबकी सब-कुछ व्यवस्था होनी है २००) प्रतिमासकी आमदनीमें। मेरे कान उनके इस भाराक्रान्त कुटुम्बकी बात सुन रहे हैं, मेरी आँखें उनके चढ़ते यौवनमें सूखे चेहरे देख रही हैं। इन्टरव्यू है, इसलिए ठीक कपड़े पहनकर आना चाहिए; और उन ठीक कपड़ोंको मैं देख रहा हूँ! वे भी गरीबीको बता रहे हैं।

हमारे पास जितने रुपयोंका कोष है, उससे इनमें से कुछ लड़कियोंको छात्रवृत्ति दे ही देंगे। कुछका चुनाव भी हमने कर लिया है। उप-समितिका कार्य समाप्त हो गया है। दो वर्षके लिये जिन लड़कियोंको छात्रवृत्ति मिल गई, वे कालेजमें पढ़कर आई० ए० या बी० ए० पास भी कर लेंगी।

पर क्या मामला यहीं समाप्त हो गया? मेरे दिमागमें ये लड़कियाँ हिन्दुस्तानके चालीस लाख गाँवोंकी कहानी बोल रही हैं। हर जगह आज संतान विवशताका भार बन रही है। पिता परेशान हैं—लड़के और लड़कियोंको जिस स्तरका भोजन देना चाहिए, जिस तरहके कपड़े देने चाहिये और जिस प्रकारकी शिक्षण व्यवस्था उन लोगोंके लिए होनी चाहिए, वह उसकी आमदनीमें सम्भव नहीं। माता परेशान है—जो उन बच्चोंकी देखरेख होनी चाहिए, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे संभाल होनी चाहिए, वह संभव नहीं। और, ये माता-पिता परेशान हैं, खीझ उठते हैं और ऐसे कार्य करनेके लिए लाचार हो जाते हैं जिनको करना अपमान है, अपराध है, अन्याय है। क्या करें—सन्तानके लिए माता-पिता क्या नहीं कर सकते? संतानका प्यार ऐसा ही होता है। ठीक; पर क्या यह प्यार भी रह पाता है? जब अभावोंकी आग जलती है, तो मनुष्य किस तरह परेशान हो उठता है। तब अज्ञान देखिए कि वे इस अवांछित सन्तानके भारको ढोये चल रहे हैं; क्योंकि वे कहते हैं और मानते हैं कि भगवानकी इच्छाके सामने उनकी लाचारी है। मनुष्य सोच नहीं पाता और सोचना नहीं चाहता कि इसमें भगवानका कोई प्रश्न नहीं है। वह बुद्धि और विवेकसे काम ले तो इस हालतसे बच सकता है। और, अपनी संतानको बचा सकता है।

यह ८, ६, १० सन्तानोंकी समस्या आज जीवनके हर क्षेत्रकी समस्या बन रही है। जबतक उसमें कमी नहीं होती, तबतक हम समस्याओंसे घिरे रहेंगे और भारतकी अगली पीढ़ी उत्पादन और

वितरणकी समस्त योजनाओंकी सफलताके बावजूद अधिक गरीब, अधिक अभावग्रस्त और अधिक चिड़चिड़ी होगी। आजकी इस समस्या को और भविष्यकी इस समस्याको हल करनेका एक ही गुरुमंत्र है कि ये ८, ९, १० संतान किसी दम्पत्ति के पैदा नहीं हों; और जैसा हमने ऊपर कहा है, आज इस विषयमें आदमीको विवशताकी कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञान प्राप्त है, अनुभव प्राप्त है, साधन प्राप्त है और सहायता प्राप्त है, जिसके आधारपर वह अपने वर्तमानको नियोजित कर भविष्यको सुनियोजित कर सकता है।

'तरुण'
१५ सितम्बर, १९५६.